ारती—

न्त्रानुशासन ग्रन्थमाला—१

ईशावास्यानुशासनम्

('ऐश्वरी' लघुभाषाव्याख्या सहित)

लेखक

स्वामी ईश्वराश्रम

प्रकाशक

सनातन भारती प्रकाशन

२२/३१, पंचगंगा घाट

वाराणसी—२२१००१

शङ्कर ! शङ्कर !! हर हर शङ्कर !!!.

शङ्कर ! शङ्कर !! जय जय शङ्कर !!!

हे शङ्कर ! हे शङ्कर !! आप शं अर्थात् सभी सुख, शान्ति, शुभ, ऐहिकामुष्मिक अभ्युदयनिःश्रेयस आदियों को करः अर्थात् करनेवाले—विस्तार करनेवाले वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही हैं। हे शङ्कर ! आप करुणा के समुद्र अनाथनाथ हैं। हम—आप के अनन्यशरण दीन भक्त, आप से करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे ऊपर कृपा का वर्षण कर हमारे सभी दुःख, अशान्ति, अशुभ, ऐहिकामुष्मिक क्लेशों को हर—हरण कीजिए, दूर कीजिए, नाश कीजिए। आप हमारे भगवद्वि-मुखता एवं भगवत्प्राप्तिसाधनविमुखता का हरण अर्थात् नाश कीजिए ॥

हे शङ्कर ! हे शङ्कर !! जय—आप को विजय हो ! आप हमेशा हमारे हृदयारविन्दों में विराजमान होइए; हमारे साक्षात् अनुभव में आइये। हे शङ्कर ! जय—आप ब्रह्मादि-पिपीलिकान्त समस्त जगत् में उसके अधिष्ठान सच्चिदानन्द-कन्द परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के रूप में विराजमान हमारे साक्षात् अनुभव में आवें। हे शङ्कर ! आप की विजय हो ! हे शङ्कर ! आप की विजय हो !!

ह्रीं तत्सत्परब्रह्मणे नमः

श्रीमदीश्वराश्रमस्वामिप्रणीतम्

ईशावास्यानुशासनम्

('ऐश्वरी' लघुभाषाव्याख्या से समलङ्कृत)

व्याख्याकार

स्वामी ईश्वराश्रम

प्रकाशक

सनातन भारती प्रकाशन

२२/३१, पंचगंगा घाट

वाराणसी-२२१००१

ह्रीम्

तत् सत् परब्रह्मणे नमः

ह्रीङ्कारवेद्यमनवद्यसदात्मतत्त्वं
ह्रीङ्कारलभ्यतदपारसुखाम्बुराशिम् ।
ह्रीङ्कारलक्ष्यपरतत्त्वमवाच्यतत्त्वं
ह्रीङ्काररूपमनुना ह्यनुसन्दधामि ॥

=जो ह्रीङ्कार रूप मन्त्र के द्वारा जानने योग्य निर्दोष सद्रूप आत्मतत्त्व है, ह्रीङ्कार रूप मन्त्र के जप चिन्तन एवं ध्यान के द्वारा प्राप्त करने योग्य अपार सुख का समुद्र ही है एवं वस्तुतः किसी भी शब्द का वाच्य न होते हुए भी ह्रीङ्कार से लक्षित होनेवाला परतत्त्व है, उसे मैं ह्रीङ्कार रूप मन्त्र के द्वारा ही अनुसन्धान करता हूँ ॥

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय निवेदन

भगवान् भूतभावन विश्वनाथ जी एवं भगवती जगज्जननी अन्नपूर्णा जी की असीम अनुकम्पा एवं जगद्गुरु शङ्करावतार श्रीमच्छङ्कराचार्य जी की आन्तरिक प्रेरणा से ही आज हम अपने प्रकाशन के द्वितीय पुष्प 'ईशावास्यानुशासनम्' को आप पाठकों के करकमलों में समर्पित करने में समर्थ हो रहे हैं जिससे हमें अपार हर्ष हो रहा है।

मनुष्य मात्र के परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है एवं उस मोक्ष के एकमात्र साधन वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दलक्षण परब्रह्म का स्वरूपसाक्षात्कार ही है। अनादि काल से भी स्त्री, शूद्र आदियों को वेदान्त आदि के श्रवण, अध्ययन आदि में शास्त्रीय अधिकार नहीं रहा है। अभी तक उनके लिए वैध रूप से वेदान्तप्रतिपाद्य शुद्ध परब्रह्म का यथार्थ स्वरूप को समझाने के लिए कोई ग्रन्थ की रचना न हो पाई थी। सभी लोग स्त्री शूद्रादियों को वेदान्त के अध्ययन में अधिकार नहीं है कहते ही रह गये; वेदान्त प्रतिपाद्य परब्रह्म के प्रतिपादन के लिए जो पुराणादियों की रचना परमर्षियों ने की, सो भी प्रधानतया किसी देवीदेवताओं के प्रतिपादन में ही पर्यवसन्न हो गये और उसी में भी स्त्रीशूद्रादियों को ब्राह्मणों को सामने रखकर ब्राह्मण के मुखारविन्द से श्रवण से अतिरिक्त अध्ययन आदि में अधिकार नहीं दिया गया। स्त्री शूद्र आदियों को भी विधिवत् वेदान्त का अध्ययन करने-कराने के लिए कोई वैध मार्ग का आविष्कार किसी ने भी अभी तक

नहीं कर पाया था। किन्तु आज सौभाग्य की बात है कि हमारे परम पूज्य परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी ईश्वराश्रम जी महाराज ने इस दिशा में एक नई कदम उठाये हैं। आज उनके सत्प्रयास से स्त्री शूद्र आदियों को भी विधिवत् वेदान्तों का अध्ययन आदि करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इसलिए सभी स्त्री शूद्र आदि उन्हें कृतज्ञ रहना होगा।

हमने स्वयं अनुभव किया है कि स्वामी जी ने अपने ईशावास्यानुशासन में ईशावास्योपनिषद् के सभी भावों को यथावत् अभिव्यक्त किया है और किसी किसी विशेष जगहों पर उपनिषद् के गूढ़भावों को भी प्रकट किया है। स्वामी जी की 'ऐश्वरी' लघुभाषाव्याख्या भी शाङ्करभाष्य के सभी भावों को यथावत् प्रकट करने में पर्याप्त है। हमने स्वामी जी का ध्यान इस विषय में आकृष्ट किया है कि उनकी ऐश्वरी व्याख्या और भी सरल एवं छोटे छोटे वाक्यों में होती तो सोने में सुगन्ध जैसा होता। उन्होंने बताया है कि भाष्यग्रन्थों का भावोंकोअभिव्यक्त करते समय भाषा का थोड़ा सा क्लिष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। उन्होंने आश्वासन दिया है कि अगले केनानुशासन की 'ऐश्वरी' और भी सरल एवं छोटे-छोटे वाक्यों से पूर्ण होगी। हमें आशा है तब तो स्वरूपतः सुन्दर वेदान्तानुशासन एवं 'ऐश्वरी' व्याख्या दोनों भी और भी मनोहर हो जायेंगी।

इस ग्रन्थ की उपयोगिता के बारे में हम क्या लिख ही सकते हैं। देश के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य आनन्द झा जी ने इसे एक 'प्रशंसनीय नई कदम' कहकर प्रशंसा की है। काशी के प्रमुख विद्वान् पण्डित राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ के शिष्य एवं उनके स्थान में आज काशीस्थ सांगवेद विद्यालय के अध्यक्ष पद को भूषित करनेवाले आचार्य श्री रामचन्द्र शास्त्री होसमने जी

ने इसे 'धार्मिक दृष्टि से भी एक महान् सुधार' कहकर प्रशंसा की है। इन दोनों पण्डित प्रवरों ने भी अपने बहुमूल्य सम्मति से इसे अलंकृत किये हैं। इस सौहार्द्र के लिए हम उनके आभारी हैं।

इस पुस्तक का प्रकाशन दरभंगा निवासी श्री नायक-परिवार के उदार धन सहायता से सम्भव हो पा रहा है। हम भगवान से करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि भगवान उन्हें वेदान्तानुशासनवेद्य सच्चिदानन्दलक्षण परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का यथार्थस्वरूप का साक्षादनुभव प्रदान कर कृतार्थ करें।

अन्त में हम अपने सुहृदय सारग्राही पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे ग्रन्थ के दोषों को सुधार कर सद्भावों का ही ग्रहण करें। उनसे सविनय आग्रह है कि यदि वे इस ग्रन्थ को अपने ज्ञानवर्धन एवं साधना में प्रयोजक एवं पथप्रदर्शक समझते हों तो अपने मित्रों को भी इसके अध्ययन के लिए प्रेरणा देकर इस आध्यात्मिक विद्या के प्रचार में सहयोग दें। इति—

विनीत

प्रकाशक

प्रस्तावना

आज भी ऐसे लोग अवश्य पाये जा रहे हैं जो धार्मिकता के क्षेत्र में अपने को परिवर्तनशील नहीं देखना चाहते हैं। उनका कहना यह है कि धार्मिक इतिकर्तव्यता के लिए सर्वथा शास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिए। वेद, उपनिषद् आदि के अध्ययन और अध्यापन के संबन्ध में जो शास्त्र सम्मत परम्परा अनादि काल से चली आ रही है कि वैदिक विधिविधान के अनुसार जिन लोगों को उपनयन संस्कार होता चला आ रहा है, वे ही वेद, उपनिषद् आदि का साक्षात् भाव से अध्ययन और अध्यापन के, अन्यथा वे अधर्म के भागी बनेंगे। यह विचार केवल उन लोगों में ही नहीं उदयशील पाया जा रहा है जो कि उपनीत होकर वेद पढ़ते या पढ़ाते आये हैं, किन्तु बहुत से ऐसे लोगों में उदित होता हुआ पाया जा रहा है जो कि अपने को साक्षात् भाव से वेद उपनिषद् आदि के अध्ययन या अध्यापन के अधिकारी तो नहीं मानते, परन्तु वेद और उपनिषद् में जो ऊँची बातें वर्णित हैं उनका ज्ञान कैसे प्राप्त हो—एतदर्थ उन्मुख हो जा रहे हैं। ऐसे लोगों की उन्मुखता और आग्रह से प्रेरित होकर विरक्त दंडी स्वामी श्री ईश्वराश्रम जी ने समग्र उपनिषदों का लौकिक संस्कृत भाषा और उनके प्रतिष्ठित छन्दों में अनुवाद उपस्थित कर देने का व्रत लिया है, क्योंकि लौकिक संस्कृत भाषा के माध्यम से ज्ञानार्जन का अधिकार अनुपनीतों को भी सदा से चला आ रहा है। आगम, स्मृति और पुराणों का निर्माण भी इसी कारण से

प्राचीन काल में युग की आवश्यकता के अनुसार हुआ था—यह विज्ञ जनों को ज्ञात ही है। प्रकृत ईशावास्योपनिषद् का छान्दस लौकिक संस्कृत में अनुवाद अपेक्षित उस समग्र औपनिषद् अनुवाद का ही प्रारम्भिक अंश है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसको अपनाकर वे लोग भी लाभान्वित होंगे जो उपनीत होने पर भी गूढ़ औपनिषद् ज्ञान से इसलिए वञ्चित हैं कि वैदिक संस्कृत के परिचय का पूर्ण अवसर उन्हें प्राप्त होता नहीं।

आनन्द झा
(सम्मानित-प्राध्यापक
कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा
तथा
आवासी–विद्वान्
मिथिला संस्कृत शोध संस्थान, दरभंगा)

सम्मति

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ॥

यह परम हर्ष का विषय है कि परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी ईश्वराश्रम जी महाराज स्त्रीशूद्रादियों को भी उपनिषत्प्रतिपादित अर्थों का यथावत् ज्ञान कराने के लिए वेदान्तानुशासन एवं उसकी 'ऐश्वरी' लघुभाषाव्याख्या की रचना कर रहे हैं एवं उसी का प्रथम पुष्प "ईशावास्यानुशासनम्" अब प्रकाशित भी हो रहा है ॥

जगत् में जो नियम एवं वैलक्षण्य अनुभव में आ रहे हैं उनका कारण केवल लौकिक ही नहीं है; किन्तु अलौकिक भी हैं। उन अलौकिक कार्यकारणभावों को असर्वज्ञ हम जीव स्वयं नहीं जान सकते हैं। उनको जानने के लिए हमें सनातन परम्परा से प्राप्त अपौरुषेय वेद के शरण में ही जाना पड़ेगा। अलौकिक कार्यकारणों को समझाने में वेद ही सार्वभौम प्रमाण है। तदनुसार स्त्रीशूद्रादियों को साक्षात् वेदों का अध्ययन आदि से प्रत्यवाय (अर्थात् पाप) होता है। जैसे कि नृसिंहपूर्वतापनी उपनिषत् में कहा गया है कि—'सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः

स मृतोऽधो गच्छति' (१।३)=सावित्री, लक्ष्मीः, यजुः, प्रणव आदि वैदिक मन्त्रों को यदि कोई स्त्री शूद्र आदि जानता है तो वह मरने के बाद नरक जाता है, इत्यादि। इसीलिए मनु ने भी कहा है कि—'स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान् मन्त्र कालेऽपसारयेत्' (मनुस्मृति ७।१४१)=वैदिक मन्त्रों का अध्ययन जप आदि के समय स्त्री, शूद्र, म्लेच्छ, कुष्ट आदि रोग से ग्रस्त, विकलांग आदियों को वहाँ हटा देनी चाहिए। इसी से स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन आदि में निषेध ज्ञापित होता है। अत एव ब्रह्मसूत्रकार वेदव्यास जी ने यह सूत्रित किया है कि 'श्रवणाध्ययनप्रतिषेधस्मृतेश्च' (ब्र० सू० १।३।३९)=स्त्री शूद्र आदि को वेद श्रवण अध्ययन आदि का प्रतिषेधक अर्थात् निषेध करनेवाले स्मृतियों से भी यही सिद्ध हो जाता है कि स्त्री शूद्र आदियों को वेदाध्ययन आदि में अधिकार नहीं है। इस सूत्र के भाष्य में भाष्यकार श्री शङ्कराचार्य जी ने भी स्त्री शूद्र आदियों को वेदाध्ययन आदि में अधिकार नहीं है कहकर सिद्ध कर चुके हैं। अतः यदि कोई स्त्रीशूद्रादि साक्षात् वेदों के अध्ययन आदि करे तो भी वे उससे प्राप्य परम-पुरुषार्थ मोक्ष रूप फल के भागी नहीं हो सकेंगे। क्योंकि—'अनधिकारिणा कृतमकृतं भवति'='अनधिकारी के द्वारा किया गया कर्म नहीं किये के समान ही है—इस न्याय से उनका वेदाध्ययन आदि निष्फल ही होगा। तथापि 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः'='ब्राह्मण को आगे रखकर पुराणादियों के द्वारा वेदार्थों का भी चारों वर्णों को श्रवण करावें' इस विधिवाक्य के अनुसार पूर्वोक्त परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी ईश्वराश्रम महाराज जी की कृति 'वेदान्तानुशासन' का भी चारों वर्ण श्रवण कर सकते हैं। अतः इस वेदान्तानुशासन के प्रकाशन से लोगों को बहुत उपकार होगा ही। आशा है कि लोग इससे अधिकाधिक लाभ उठावेंगे॥

मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी ही कृतियों के द्वारा लोगों का उपकार करते हुए श्री स्वामी जी चिरायु हों। इति—

रामचन्द्र शास्त्री होसमने
(अध्यक्ष, सांगवेद विद्यालय
एवं
मन्त्री, गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा,
रामघाट, वाराणसी)

भूमिका

अज्ञानान्तःपतितजगदुद्वीक्ष्य कारुण्यदृष्ट्या
उद्धर्त्तुं विश्वमखिलमथ ब्रह्मविद्योपदेशैः ।
कैलासावाससुखमपहायावतीर्णं भुवीशं
नौमि श्रीशङ्करमखिलशास्त्रार्थमुद्घाटयन्तम् ।।*

'वेदाध्ययन एवं वेदाध्यापन में स्त्रीशूद्रादियों को अधिकार है या नहीं, स्त्रीशूद्रादि प्रणव अर्थात् ओंकार, गायत्री आदि मंत्रों का जप कर सकते हैं या नहीं' इत्यादि आजकल एक विवाद का विषय हो चुका है। सनातन परम्परा के अनुगामी विद्वान् स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मंत्रों के जप में अधिकार नहीं है कहकर अपने पक्ष

---

* अपनी कारुण्यदृष्टि से समस्त जगत् को आत्मस्वरूप के अज्ञान से ग्रस्त एवं दुःखी देखकर ब्रह्मविद्या के उपदेश के द्वारा समस्त जगत् का उद्धार करने की इच्छा से अपने कैलासधाम में रहनेवाले सभी सुखों को छोड़कर इस संसार में श्री (आदि) शङ्कराचार्य के रूप में अवतीर्ण होकर सभी शास्त्रसिद्धान्तों का उद्घाटन अर्थात् स्पष्टीकरण करनेवाले श्री शङ्कराचार्यरूपी परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ।।

की पुष्टि के लिए श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदि प्रमाणों को उपस्थापित करते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रगतिवादी सुधारक विद्वान् 'स्त्रीशूद्रादियों को भी वेदाध्ययन एवं वेदाध्यापन तथा प्रणव गायत्री आदि वैदिक मंत्रों के जप आदि में अधिकार होनी चाहिए, पहले वैदिक युग में स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों के जप आदि का अधिकार था, किन्तु वैदिक युग के बाद के ब्राह्मणपक्षपाती विद्वानों ने स्त्रीशूद्रादियों को अनधिकारी बताया, स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययनादि में निषेध करनेवाले सभी मन्त्र उन्हीं ब्राह्मणपक्षपाति विद्वानों के द्वारा मूल ग्रन्थों में प्रक्षिप्त हैं' इत्यादि प्रकार से कहते हुए अपनी परम्परा के पूर्वाचार्यों को पक्षपातित्वादि दोषों से दूषित बतलाते हुए अपने को परम विद्वान् एवं परम उदार माननेवाले वे अपने पक्ष की पुष्टि के लिए श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदि के वाक्यों को घटाने का यथेष्ट प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार 'वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों का जप आदि में स्त्रीशूद्रादियों का अधिकार' आज एक विवादास्पद विषय बन चुका है।

उपर्युक्त विषय में विचार प्रकट करते रहने को हम विद्वानों को ही छोड़ देते हैं क्योंकि इस प्रकार के शुष्क एवं व्यर्थ विचार में ही पड़े रहना हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा बस इतना ही उद्देश्य है कि हम इस परिस्थिति में स्त्रीशूद्रादियों की किस प्रकार उपकार कर सकते हैं। हमारा विनीत धारणा यही है कि उपर्युक्त प्रकार के व्यर्थ विवादों से किसी भी पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकेगी। स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों के जप में अधिकारी या अनधिकारी सिद्ध कर देने मात्र से हमारा कुछ भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकेगा और न उनका भी कोई

पुरुषार्थ सिद्ध हो सकेगा । यह इसलिए है कि—अधिकार का अर्थ केवल सामर्थ्य ही नहीं है। यदि अधिकार का अर्थ सामर्थ्य ही होता तो यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता कि स्त्री शूद्रादि को भी वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों का जप में अधिकार है क्योंकि जिनको समर्थ चक्षु-रिन्द्रिय हैं एवं योग्य अक्षर ज्ञान भी है वे स्त्री शूद्रादि भी यदि समनस्क हों तो अवश्य ही वेद का गुरुमुख से अध्ययन कर सकते हैं, एवं जिनका वागिन्द्रिय ठीक है वे वैदिक मन्त्रों का आचरण भी कर सकते हैं एवं अपनी विद्वत्ता के अनुसार वेदों का अध्यापन भी कर सकते हैं—यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। प्रत्यक्ष सिद्ध पदार्थ के विषय में विवाद करना अपनी मूर्खता का ही प्रतिपादन कर लेना है। अतः वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों के जप आदि में स्त्री शूद्र आदियों का अधिकार है—सामर्थ्य है या नहीं—यह विवाद का विषय नहीं बन सकता है। हाँ, विवाद का विषय यह हो सकता है, कि स्त्रीशूद्रादियों के वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मन्त्रों के जप आदि सफल होंगे या नहीं। अधिकार का यथार्थ अर्थ भी यही है। 'फलस्वाम्यं ह्यधिकारः' फल प्राप्त करने की योग्यता ही अधिकार है। वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मंत्रों का जप आदि का चरम लक्ष्य समस्त संसार बन्धनों का समूल नाशपूर्वक परमसच्चिदानन्दानुभवात्मक परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। अतः यह मोक्षावस्था मन एव इन्द्रियों के परे है। अतः इसके विषय में हमें प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आदि प्रमाण प्रामाणिक ज्ञान नहीं करा सकते हैं। इस अतीन्द्रिय पार-लौकिक विषय में हमें वेद एवं परमर्षिप्रणीत वेदानुसारी एवं वेदाविरुद्ध स्मृति, इतिहास एव पुराणादि ही प्रमाण हैं। श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदि के समान ही हमें सनातन एवं

प्रामाणिक आचार्य परम्परा भी प्रमाण है। सनातन एवं प्रामाणिक वैदिक परम्परा में स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि मन्त्रों को जप करते हुए देखा नहीं जाता है। सनातन वैदिक आचार्य-परम्परा अनादि-काल से वेद के एक भी अक्षर या स्वर का व्यत्यास न करते हुए सम्पूर्ण वेदराशि को जैसे के तैसे आज तक सुरक्षित रखी है—अतः अत्यन्त विश्वसनीय है। अतः इसमें संदेह नहीं है कि यदि स्त्रीशूद्रादियों को भी वेदाध्ययन आदि में अधिकार होता तो उसे भी यह विश्वसनीय सनातन वैदिक परम्परा वेदराशि के जैसे ही सुरक्षित रख लेती। सनातन वैदिक परम्परा के आचार्यों ने वेद एवं वैदिक धारणाओं को बदलने का थोड़ा सा भी प्रयास नहीं किया है, सो उनके भाष्यादि ग्रन्थों का अवलोकन करने से सभी को पता चल ही जाता है। जितने भी वैदिक भाष्यादि ग्रन्थ रचे जा चुके हैं, वे सभी के सभी निघण्टु आदि पूर्वाचार्यों के मत के अनुसार ही हैं—उन्हीं के पदचिह्नों में सभी व्याख्याकार चलते आये हैं। वे अपनी स्वतन्त्रता बस पूर्वाचार्यों के मत के आविष्कार में ही मानते आये हैं, न कि पूर्वाचार्यों का खण्डन में। अतः यदि पूर्वाचार्यों को भी स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययनादि सम्मत होता तो उसके विरुद्ध सनातन परम्परा के कट्टर अनुयायी आचार्य स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन आदि का निषेध कैसे कर सकते ? अतः सनातन एवं प्रामाणिक इस आचार्य परम्परा में श्रद्धा रखनेवाले आस्तिक सज्जन स्त्रीशूद्रादियों को परम्परा के निन्दक एवं अपने को महा-पण्डित एवं परोपकारी माननेवाले कुतार्किकों के बहकाव में नहीं पड़ना चाहिए। यदि कोई स्त्रीशूद्रादि इन लोगों के बहकाव में पड़ जाते हैं तो बस उनका अन्धे के मार्गदर्शन में चलनेवाले अन्धे का हाल के जैसे ही हो जायेगा। अतः अपने श्रेय चाहने-

वाले सभी स्त्रीशूद्रादियों को, विशेषतः इस अतीन्द्रिय पारलौकिक श्रेय के विषय में अवश्य ही यथाशक्ति एवं यथासम्भव शास्त्र एवं प्रामाणिक सनातन सम्प्रदाय को सम्मत मार्ग में ही चलना चाहिए।

प्रामाणिक संनातन सम्प्रदाय में स्त्री शूद्रादियों को वेदाध्ययन, वेदाध्यापन एवं प्रणव गायत्री आदि वैदिक मंत्रों के जप आदि में अधिकार नहीं दिखाई देता है—सो बात उपर्युक्त विचार से स्पष्ट हो जाता है। अब रही बात शास्त्रों की। वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि—'सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति (नृ० पू० ता० उ० १.३) स्त्री शूद्र एवं पतित द्विजाति आदियों को सावित्री (गायत्री), प्रणव (ओंकार), यजुः, लक्ष्मीः आदि वैदिक मंत्रों का अधिकार अभीष्ट नहीं है। भगवान् मनु ने भी कहा है कि—'स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान् मन्त्रकालेऽपसारयेत्' (मनुस्मृति ७।१४९) वैदिक मंत्रों का अध्ययन, अध्यापन, जप आदि करते समय वहाँ से स्त्री, म्लेच्छ, रोगी, विकलांग आदियों को हटा देनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि वैदिक मन्त्र स्त्रीशूद्रादियों में सफल नहीं होंगे एवं वैदिक मन्त्रों के श्रवण उनको आध्यात्मिक हानि भी करेगा। अतः उन्हें इन वैदिक मंत्रों का श्रवण नहीं करना ही श्रेय है। जिस महापुरुष मनु ने अधर्म कर दिया कह कर अपने ज्येष्ठ पुत्र को भी राजसिंहासन से वञ्चित करके देश से बहिष्कार कर दिया, ऐसे निष्पक्ष-पाती एवं समदृष्टि भगवान् मनु ने क्या मानव मात्र के लिये कल्याणकारी धर्म का उपदेश करते समय स्त्रीशूद्रादियों के ऊपर पक्षपात करेगा? क्या कभी पक्षपात कर सकता है? कभी भी सम्भव नहीं है; यह कल्पना के भी बाहर है।

वैद्य दवा देते हैं रोग को देखकर, न कि रोगी की रुचि या पसंद को देखकर। धर्म भी संसार रोग को निवारण करने

के लिये हमें उपलब्ध एकमात्र दवा ही है। अतएव मनु आदि धर्मशास्त्री ऋषियों ने भी जीवों के संसार रूप रोग निवृत्त हो इस उद्देश्य से संसाररोगनिवृत्ति के लिए उपयुक्त वेदों में प्रतिपादित धर्मों का ही विधान करेंगे, न कि जीवों की रुचि या पसंद के अनुसार रुचिकर धर्म का विधान करेंगे। दवा के रुचिकर होना या न होना मुख्य नहीं है, किन्तु दवा के रोगनिवारक होना या न होना मुख्य है। उसी प्रकार धर्म भी हमारे वैयक्तिक या सामाजिक रुचि या पसंद के अनुसार है या नहीं है—सो बात मुख्य नहीं है, किन्तु धर्म हमारे पुरुषार्थों का साधक है या नहीं सो मुख्य है। मनु आदि ऋषियों के द्वारा विहित धर्म के अनुष्ठान से आज तक कितने ही लोग अपने अपने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थों को प्राप्त कर कृतार्थ हो चुके हैं। क्या इतने पर भी हमें मनु आदि महर्षियों की धर्म-नीति में विश्वास नहीं आता है? यदि कोई यह कहेंगे कि हमें मनु में तो विश्वास है किन्तु स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन आदि का निषेध करनेवाले जिन वाक्यों को आप मनु का कहकर उद्धृत किये हैं, उन वाक्यों पर हमें विश्वास नहीं है; वे अवश्य ही ब्राह्मण एवं पुरुष पक्षपाती पण्डितों के द्वारा प्रक्षिप्त होंगे—तो ऐसा उनका कहना उचित नहीं है, क्योंकि—पूर्वाचार्य मेधातिथि आदि व्याख्याकारों ने इन स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन आदि निषेधक वाक्यों को भी प्रमाण मानकर उनकी व्याख्या की है। यदि निराधार ही उनको प्रक्षिप्त कहते हों तो जिस प्रकार वे हमारे द्वारा उद्धृत वाक्यों को प्रक्षिप्त कहेंगे उसी प्रकार हम भी उनके द्वारा उद्धृत वाक्यों को प्रक्षिप्त कह सकते हैं और वे भी हमें नहीं रोक सकेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्र में ही अनाश्वास उत्पन्न हो जायेगा, जो अभीष्ट नहीं है। यह वेदान्तानुशासन ऐसे शास्त्र में विश्वास नहीं रखनेवाले नास्तिकों को लक्ष्य में रखकर रचा भी

नहीं गया है। इस ग्रन्थ की रचना उन लोगों को लक्ष्य में रखते हुए किया गया है कि जिन लोगों को शास्त्र में पूर्ण विश्वास है। यहाँ बस विचार भी इस लिए प्रस्तुत किया जा रहा है कि जो आस्तिक श्रद्धा एवं भक्ति पुरःसर वेदान्तानुशासन के अनुशीलन में तत्पर हैं, उनका इन नास्तिकों के निर्मूल विचार धारा से कभी मतिविक्षेप न हो जाय। यदि वे नास्तिक भी हमारे विचार को उचित मानते हों तों उनका स्वागत है। और वे भी शास्त्रीय विधि से परमपुरुषार्थ मोक्ष के लिए प्रयत्नशील हो सकते हैं।

मनु आदि धर्मशास्त्रियों के मत से स्त्रीशूद्रादियों का अध्ययन आदि में अधिकार नहीं है। जो स्त्रीशूद्रादि प्रमाद से भी वेदाध्ययन आदि कर देते हैं उन्होंने उन्हें भी महान पाप बताया है। यथा—'यथास्य वेदमुपश्शृण्वतस्पुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्' =जो कोई स्त्रीशूद्र आदि समीप में बैठकर वैदिक मन्त्रों का श्रवण कर लेते है, उन्हें उस कर्म से जनित महान् पाप से छूटने के लिए प्रायश्चित बस एकमात्र=शीसा या लाह आदि को पिघला कर कानों में भरना ही है। अत एव उन्होंने ब्राह्मणादि द्विजातियों को आज्ञा दी है कि 'शूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्'=शूद्र के समीप वेद का अध्ययन नहीं करना चाहिए। 'स्त्रशूद्री सधर्माणौ' ='स्त्री एवं शूद्र—इनका समान धर्म होता है'—इस धर्मसिन्धु-कार आदि धर्मशास्त्रियों के निर्णय के अनुसार स्त्रीशूद्रादियों को समान रूप से वेद श्रवण में अधिकार नहीं है तथा उनके द्वारा किये गये प्रामादिक श्रवण से उन्हें पाप लगता है। जिनको वैदिक मन्त्रों के श्रवण मात्र से इतना पाप होता हो तो उनका स्वयं अध्ययन, अध्यापन, जप आदि करने से कितना पाप होता होगा ? अतः स्त्रीशूद्रादियों को वेद के श्रवण, अध्ययन, अध्यापन, जप आदि सभी अर्थतः निषिद्ध हो जाते हैं। धर्मशास्त्रकारों ने अत एव स्पष्ट कह दिया हैं कि 'द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम्'=

द्विजाति अर्थात् जिनको विधिवत् उपनयनादि संस्कार हो चुके हैं वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए ही वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, वैदिक यज्ञ याग आदि कर्म एवं दान में अधिकार है। अत एव ब्रह्मसूत्रकार वेदव्यास जी ने सूचित किया है कि 'श्रवणाध्ययनप्रतिशेधात् स्मृतेश्च (ब्र० सू० १. ३. ३८)=स्त्रीशूद्रादियों को वेदों का श्रवण एवं अध्ययन का शास्त्रों में निषेध होने के कारण तथा स्त्रीशूद्रादियों के लिए इतिहास पुराण आदि स्मृतियों की रचना होने के कारण भी शूद्र को वेद में अधिकार नहीं है—यह बात सिद्ध हो जाती है। इसी ब्रह्मसूत्र के भाष्य में आचार्यप्रवर भगवान् श्रीमच्छङ्कराचार्य लिखते हैं कि 'वेदपूर्वकस्तु नास्त्यकारः शूद्राणामिति स्थितम्'=शूद्रादियों को वेदपूर्वक ब्रह्मविद्या में अधिकार नहीं है यह सिद्धान्त है। श्रीमद्भागतकार ने भी स्पष्ट लिखा है कि 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेयः एवं भवेदिह। इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।' स्त्री शूद्र एवं पतित द्विजातियों को वेदों का श्रवण करने का अधिकार नहीं होने के कारण, श्रेय साधन के बारे में अनभिज्ञ उन लोगों का हित करने की इच्छा से स्त्रीशूद्रादियों पर कृपा करके व्यास जी ने महाभारत इतिहास की रचना की।

महाभारत, रामायण आदि इतिहास एवं भागवत आदि पुराण भी वेद के समान ही हैं। 'इतिहास पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'=इतिहास एवं पुराण को पाँचवाँ वेद कहा जाता है। इन इतिहास एवं पुराणों को स्त्री शूद्र आदि ब्राह्मण को आगे रखकर सुन सकते हैं। अतः ब्राह्मणविद्वानों को शास्त्राज्ञा है कि—'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः'=ब्राह्मण को सामने रखकर चारों वर्णों को इतिहास एवं पुराणों का श्रवण करावें। स्त्रीशूद्रादियों को साक्षात् इतिहास एवं पुराणों का श्रवण करना या अध्ययन करना शास्त्रसम्मत नहीं है। भविष्य पुराण में

स्पष्ट उल्लेख है कि 'नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं ब्राह्मणक्षत्रियौ विना। श्रोतव्यमेतच्छूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन।'=यह इतिहास एवं पुराण आदि शास्त्र ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य पुरुषों को छोड़कर अन्य स्त्रीशूद्रादियों के द्वारा अध्ययन करने के लिए योग्य नहीं है। स्त्रीशूद्रादियों को इन इतिहास एवं पुराण आदि शास्त्रों को कोई ब्राह्मण को आगे रखकर सुनना चाहिए, कभी भी स्वयं अध्ययन नहीं करना चाहिए।

अब रही शास्त्रों को यथावत् नहीं समझनेवाले आधुनिक अधकच्चे साधु-गुरुजनों की बात, जो स्वयं धर्मशास्त्र में परिश्रम किये बिना ही अपने को धर्मशास्त्र के महान् मर्मज्ञ एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र समझ लेते हैं। वे इसका परिणाम क्या होगा सो विचार किये बिना ही अपने श्रद्धालु एवं अज्ञ शिष्य एवं श्रोता स्त्री-शूद्रादियों को भी उपनिषद्, इतिहास पुराणादियों का अध्ययन, वैदिक मन्त्रों का जप आदि के लिए अधिकारी बतलाते फिरते हैं। दो तीन ऐसे प्रसंग भी हमारे दृष्टि में पड़े हैं जहाँ नामी विद्वान् गुरु भी अपने श्रद्धालु स्त्रीशूद्रादि शिष्यों को ओङ्कार आदि वैदिक मन्त्रों का उपदेश करके, संशयग्रस्त शिष्यों से कहा करते हैं कि—'ओङ्कार आदि का जप स्त्रीशूद्र आदि जप नहीं करना चाहिए—सो सभी कृतयुग त्रेतायुग एवं द्वापरयुग की बात है। यह कलियुग है, यहाँ ओङ्कार जपने के लिए सभी को अधिकार है। जो अधिकार नहीं था, सो मैं स्वयं गुरु आपको दे दिया है, जाइये आप मन्त्र जपिये। उन धर्मशास्त्र के बातों को बतानेवाले दुष्टों की बात सुनना नहीं चाहिए—यह गुरुद्रोह है।' अहो! शास्त्रप्रतिपाद्य एवं शास्त्रैकसमधिगम्य सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म की प्राप्ति के लिए इन शास्त्रानभिज्ञों के द्वारा अशास्त्रीय मार्ग का आविष्कार! वस्तुतः ये पण्डितंमन्य अशास्त्रीयोपदेशक गुरु लोग ही आजकल दिखाई देनेवाली आध्यात्मिक उच्छृङ्खलता

के मूल कारण है। भगवती श्रुति ने तभी तो कहा है कि—'अविद्यायामन्तरे वर्तमाना. स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः। दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः॥'=जिस प्रकार कोई एक अन्धा अनेकों अन्धों को मार्गदर्शन करते हुए गड्ढे-कङ्कड़ आदि में पड़कर उन अन्धों के साथ स्वयं भी दुःखी होता है, उसी प्रकार ये कपटी गुरु लोग भी स्वयं अज्ञानान्धकार में डूबे रहते हुए भी स्वयं अपने को बड़े पण्डित मान लेते हैं एवं अपने साथ बहुत श्रद्धालु लोगों को लेकर इस संसार रूपी जंगल में भटकते फिरते हैं। भगवती श्रुति भी कहती है कि—'सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि विजानीयात् स्त्रीशूद्रः, स मृतोऽधो गच्छति। तस्मात् सर्वदा नाचष्टे। यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव स मृतोऽधोगच्छति। (नृ० पू० ता० उ० १.३)=सावित्री (गायत्री) लक्ष्मीः, यजुः, प्रणव (ओङ्कार) आदि वैदिक मन्त्रों को यदि स्त्री एवं शूद्र जान लेते हैं तो वे मरने के बाद घोर नरक में जाते हैं। अतः उनके श्रेय चाहनेवावे आचार्य कभी भी स्त्री शूद्र आदियों को वैदिक मन्त्रों का उपदेश नहीं करते हैं। यदि कोई आचार्य स्त्रीशूद्रादियों को इन वैदिक मन्त्रों को सुना भी देता है तो वह आचार्य भी उस पाप कर्म के कारण मरने के बाद शिष्य के साथ स्वयं भी घोर नरक में जाता है। भविष्यत्पुराण में भी एक ऐसे शूद्र को पुराण आदि शास्त्रों का उपदेश देनेवाले ब्राह्मण का प्रसंग आया है। वहाँ कहा गया है कि 'ततो वैवस्वतैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वधः'=वह शूद्र को अशास्त्रीय उपदेश देनेवाले ब्राह्मण को मरने के बाद यमदूतों ने ले जाकर घोर नरक में गिरा दिया और 'तेनो पदिष्टो यः शूद्रः स भुङ्क्त्वा नरकान् क्रमात्। अनेकासु जनित्वा कुत्सितास्वपि योनिपु। गृद्धजन्माऽभवत् पश्चात् गन्धमाधनपर्वते॥'=उस गुरु के द्वारा उपदिष्ट शूद्र भी अनेकों घोर नरकों को क्रम से भोगकर एवं अनेक निन्द्य योनियों में जन्मकर अन्त में गन्धमादन पर्वत में

गीध होकर जन्म लिया। इसी प्रकार ये अशास्त्रीयोपदेशक अपने अशास्त्रीयोपदेश से अपने स्वयं का एवं अपने शिष्यों का भी पतन का हेतु बन जाते हैं। अतः समाज को चाहिए कि इन अशास्त्रीयोपदेशकों को पहचान कर इनके हाथों से समाज को बचा लें। भविष्य पुराणकार कहते हैं कि 'शूद्रायोपदेष्टारं द्विजं चाण्डालवत् त्यजेत्'=जो ब्राह्मण स्त्रीशूद्रादियों को अशास्त्रीय वैदिक मन्त्रों का उपदेश करता है—उसे समाज चाण्डाल के समान दूर से ही त्याग कर दें—समाज से बहिष्कार कर दें।

शास्त्र को मानना हो तो सम्पूर्णतया मानना चाहिए; न कि आधा मानना और आधा न मानना। यदि हमें दुःखद संसार रोग की निवृत्ति के लिए शास्त्रप्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का साक्षात्कार चाहिए, तो हमें उसके लिए शास्त्रों में उपदिष्ट सभी साधनों को करना भी होगा। दवा और पथ्य एक ही डाक्टर का हो तभी वह सफल हो सकेगा। क्या पाठक महाशय! आयुर्वेदिक डाक्टर के दवा लेते समय अंग्रेजी डाक्टर के बताये गये पथ्य करते रहना उचित है? अतः जो आस्तिक शास्त्र प्रतिपाद्य एवं शास्त्रैक समधिगम्य परब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार के द्वारा परमपुरुषार्थ समस्त सांसारिक दुःखों के समूलनिवृत्तिपूर्वक परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष चाहते हैं उनको चाहिए कि शास्त्र विहित सभी नियम एवं साधनों का यथाशक्ति एवं यथासंभव पालन करें।

यदि कोई पण्डितंमन्य कहें कि महाराज! हम ब्रह्म-साक्षात्कार के भूखे हैं; हमें विधिनिषेधात्मक आप के धर्मशास्त्र से क्या मतलब? भगवान् श्रीकृष्ण भी कहे हैं कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥=हे अर्जुन! तुम सभी धर्मों को सर्वथा त्यागकर मुझ एक का ही शरण में आ जाओ मैं तुम्हें सभी पापों से छुड़ा देता हूँ।

'अहं तेषां समुद्धर्ता—मैं उन शरणागत भक्तों का उद्धार करता हूँ इत्यादि। यदि कहेंगे कि नित्य-नैमितिक कर्मों के न करने से पाप लगेगा तो महाराज! उससे भी हमें डर नहीं है क्योंकि जब एक बार हमें ब्रह्म ज्ञान हो जायेगा तब हमारे सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। भगवान् स्वयं कहते हैं कि—'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मात् कुरुतेऽर्जुन !=हे अर्जुन ब्रह्मज्ञान रूप अग्नि सभी कर्मों को नष्ट कर देता है। अतः हमें आपका धर्म-अधर्म से क्या लेना-देना है—तो बन्धु ! ऐसी धारणा उचित नहीं है; क्योंकि—ब्रह्मज्ञान विशुद्धान्तःकरण में ही में संभव है; न कि अशुद्धान्तःकरण में। अन्तःकरण का शोधन शास्त्रविहित धर्मों के यथावत् आचरण से ही संभव है। आचार्य शङ्कर का यह स्पष्टोक्ति का स्मरण कर लें कि—'स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्। साधनं प्रभवेत्पुसां वैराग्यादि चतुष्टयम् ॥=अपने अपने वर्ण एवं आश्रम के लिए शास्त्रों में विहित धर्मों का यथावत् आचरण के द्वारा भगवान् हरि के सन्तुष्ट हो जाने पर, भगवान् हरि की कृपा से ही वैराग्यादि-साधन चतुष्टय सिद्ध होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयं कहते हैं कि 'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे'=श्रुति एवं स्मृति (एवं तदनुसारी सदाचार) मेरी ही आज्ञा है एवं 'आज्ञोल्लंघी मम द्वेषी' =जो पुरुष मेरी आज्ञास्वरूप इन श्रुति एवं स्मृतियों का उल्लंघन करना है अर्थात् श्रुति स्मृति एवं सदाचार सम्मत धर्म का पालन नहीं करना है—वह मेरा द्वेषी है। परब्रह्म साक्षात्कार के लिये योग्य अन्तःकरण की शुद्धता शास्त्र बाह्य कर्मों से सम्भव नहीं है। शास्त्र-बाह्य साधनों से भला सिद्धियाँ एवं सामाजिक प्रतिष्ठा आदि प्राप्त हो सकती हैं किन्तु ब्रह्मज्ञान के लिए आवश्यक विशुद्धता अर्थात् पवित्रता सम्भव नहीं हो सकेगी। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है कि—"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न सः सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥"=जो

पुरुष शास्त्र की विधि को छोड़कर अपनी इच्छा से ही बर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता है और न परागति को तथा न सुख को ही प्राप्त करता है। अत एव भगवान् श्रीकृष्ण ने शास्त्रीय धर्म का त्याग उचित नहीं बताया। यथा—'यज्ञदान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनिषिणाम् ॥ एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्या-नीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥'=शास्त्रोक्त यज्ञ दान एवं तप रूप कर्म त्याग करने के लिए योग्य नहीं है, किन्तु उन्हें करना ही चाहिए; क्योंकि—यज्ञदान एवं तप—ये तीनों ही बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करने का साधन है अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए योग्य बनानेवाले साधन हैं। इसीलिए हे पार्थ! यज्ञ दान एवं तप रूप शास्त्रीय कर्मों को आसक्ति एवं फलों के त्यागपूर्वक करना चाहिए, यही मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है। अतः अशास्त्रीय विधि से हम ब्रह्मविद्या प्राप्त करेंगे एवं कृतकृत्य हो जायेंगे यह केवल भ्रान्ति ही है।

यदि कोई नास्तिक यह भी कहते हो कि महाराज! आप के शास्त्रों के अनुसार साधना करने पर फल मिल ही जायगा इसमें क्या विश्वास है? क्या कोई प्रमाण है? तो हम ऐसे नास्तिकों से कह ही क्या सकते हैं। हमने पहले ही बता दिये हैं कि मनु आदि के धर्मशास्त्र के अनुसार असंख्य लोग कृतकृत्य हो चुके हैं; यदि ढूँढेंगे तो आज भी हमें इसी शास्त्रविधि से सफल हुए लोग मिल जायेंगे भी। पारलौकिक अतीन्द्रिय विषयों में प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण नहीं प्रवृत्त होने के कारण हमें श्रद्धाभक्तिपुरःसर शास्त्र के ही शरण जाना पड़ता है। पारमार्थिक साधना में बस श्रद्धा एक ही सम्बल है। श्रद्धा के लिए योग्य बस अनादि अपौरुषेय एवं निर्दोष वेद, तदनुसारी मनु आदि महर्षि प्रणीत स्मृतियाँ, प्रामाणिक परमर्षि वाल्मीकी

वेदव्यास आदियों के द्वारा रचित इतिहास पुराणादि शास्त्र एवं शास्त्रानुगामी सनातन सदाचार परम्परा ही हैं। इन श्रुति स्मृति एवं सदाचारों में सत्यत्त्व बुद्धि ही श्रद्धा है। यदि इनमें श्रद्धा न हो तो हम कर ही क्या सकते हैं। बस हम इतना ही कह सकते हैं कि भय्या, अभी तुम्हें कुछ सत्सङ्ग एवं सन्तों की सेवा करना है, कुछ दिन तक सन्तों के चरणरज अपने मस्तक पर धरो और कुछ दिन तक सन्तों के चरणोदक पीओ, और भगवान् से प्रार्थना कर लो—तब कभी उनके अनुग्रह से तुममें भी श्रद्धा जागृत हो जायेगी। जिनको शास्त्रों में श्रद्धा नहीं है उन्हें अपने में श्रद्धा को जागृत कर लेने के लिए उपर्युक्त साधन अवश्य कर्तव्य हैं। श्रद्धा के बिना पारमार्थिक साधना सम्भव ही नहीं है। आचार्य शङ्कर कहते हैं कि—'श्रद्धाविहीनस्य तु न प्रवृत्तिः प्रवृत्तिशून्यस्य न साध्यसिद्धिः। अश्रद्धयैवाभिहताश्च सर्वे मज्जन्ति संसारमहासमुद्रे ॥"= जिनमें श्रद्धा नहीं है उनमें साधनों के अनुष्ठान में प्रवृत्ति ही सम्भव नहीं है, साधनों में प्रवृत्त ही न होगा तो उसे साध्य की प्राप्ति भी कैसी होगी? इस संसार में अधिकांश लोग अश्रद्धा के द्वारा ही मारे गये है—अर्थात् उन्हें शास्त्रीय साधनों में श्रद्धा न होने के कारण वे उन शास्त्रीय साधनों का अनुष्ठान में प्रवृत्त नहीं हो पाते हैं, शास्त्रीय साधन नहीं करने से उन्हें शास्त्रैक-समधिगम्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता है, परब्रह्म के साक्षात्कार न होने से वे अनादिकाल से अनन्त कील तक दुःखद संसार सागर में डूबे ही रहते हैं। अतः अपने हित चाहनेवाले सभी स्त्री पुरुषों को प्रयत्नपूर्वक शास्त्र में श्रद्धा उत्पन्न कर लेना चाहिए; शास्त्र एवं शास्त्रीय विधिविधानों में विश्वास रखना चाहिए। आचार्य शङ्कर कहते हैं कि—'देवे च वेदे च गुरौ च मन्त्रे तीर्थे महात्मन्यपि भेषजे च। श्रद्धा भवत्यस्य तथा यथान्तस्तथा तथा सिद्धिरुदेति पुंसाम् ॥=भगवान्, वेद,

गुरु, मन्त्र, तीर्थ, सन्त-महात्मा एवं दवा—इनमें जिन मनुष्यों को जितना श्रद्धा है उतना ही शीघ्र उनकी सिद्धि होती है। अतः साधकों को अतीन्द्रिय पारलौकिक विषय में व्यर्थ कुतर्क न करते हुए यथाशीघ्र श्रद्धा-भक्ति पुरःसर शास्त्रीय साधना में प्रवृत्त हो जाना चाहिए।

यदि कोई इस अतीन्द्रिय पारलौकिक विषय में भी प्रत्यक्ष प्रमाण ही चाहते हों तो उन्हें मृत्यु की प्रतीक्षा करनी होगी। मरने के बाद ही वे शास्त्रीथ विधान सफल है या नहीं है कहकर जान सकते हैं। किन्तु मरने के बाद पुनः यह साधना के लिए योग्य मानव शरीर चौरासी लाख योनियों में दुःख भोगने के बाद ही उपलभ्य है। अतः हम परलोक है या नहीं एवं शास्त्रीय साधन सफल होंगे या नहीं कहकर पहले प्रत्यक्ष देख लेंगे तदनन्तर साधन करेंगे कहना उचित नहीं है। हम कितने बार मर मरकर परलोक को देखे होंगे, किन्तु क्या हमें पूर्वजन्म की किसी बात का भी आज स्मरण है? अतः देखना भी व्यर्थ ही है। बस जो कुछ भी हमें अपने पारलौकिक हित के लिए कर्म करना हो तो यहाँ शास्त्र में श्रद्धा रखकर करना ही होगा। इसलिए वृद्धों ने कहा है कि—'सन्दिग्धे परलोकेऽपि कार्यमेव शुभं जनैः। यदि न स्यान्न नो हानिर्यदिस्यान्नास्तिको हतः।'=परलोक के सन्दिग्ध अर्थात् सन्देहास्पद होने पर भी मनुष्यों को चाहिए कि वे शास्त्रविहित शुभ कर्मों को करें। यदि परलोक न रहे तब भी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक शास्त्रीय धर्म की अनुष्ठान करनेवाले की कोई हानि नहीं है। यदि परलोक रहता तो शास्त्र में श्रद्धा न रहने के कारण जो नास्तिक पुरुष शास्त्रीय धर्म का त्याग कर देते हैं, उनका सर्वनाश हो जायेगा। अतः हमें श्रद्धा रहे या नहीं रहे, शास्त्रीय विधि-विधानों के अनुसार ही बर्तना श्रेयस्कर है।

उपर्युक्त विचार से यह स्पष्ट हो गया है कि अपने कल्याण

चाहनेवाले सभी स्त्री पुरुषों को शास्त्रोक्त विधि से ही परमार्थिक साधना करना चाहिए। शास्त्रविरुद्ध उपदेश देनेवाले गुरु एवं शास्त्रविरुद्ध उपदेश पानेवाले शिष्य दोनों का भी पतन हो ही जाता है। अतः मुमुक्षुओं को यथाशीघ्र अपनी गलतियों को पहचान कर अशास्त्रीय साधना को त्यागकर शास्त्रीय साधना में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। नदी या समुद्र के किनारे बालू के गगनचुम्बी महल बनाने के जगह पर नदी या समुद्र के किनारे से थोड़ा दूर पर जहाँ प्रवाह-लहर आदि का कोई भय न हो वहाँ एक छोटी सी झोपड़ी बना लेना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार अदृढ़ एवं अशास्त्रीय बहुत सी साधना करने के जगह पर थोड़ा सा भी दृढ़ एवं विश्वसनीय शास्त्रीय साधना कर लेना श्रेयस्कर है। अपने एवं दूसरों का अहित साधनेवाले असिद्ध एवं अशास्त्रज्ञ गुरुओं की विष भरी मीठी मीठी बातों को सुनने के जगह पर सर्वहितैषी निष्पक्षपाती सर्वज्ञकल्प सिद्ध परमर्षियों के द्वारा निर्मित कड़ुवा किन्तु अमृत से सना हुआ शास्त्रोपदेश को सुनना, मानना एवं करना ही श्रेयस्कर है।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थों में से समस्त सांसारिक दुःखों का आत्यन्तिक विनाश पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। यद्यपि सभी दार्शनिकों ने एवं नीतिकारों ने अपनी योग्यता के अनुसार परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए विविध साधनों का निरूपण किया है, तथापि 'सनातन भारती' अर्थात् अनादि अपौरुषेय एवं निर्दोष सनातन वेदरूप भारती अर्थात् वाणी में ही श्रद्धा रखनेवाले आस्तिक लोग उन्हें प्रमाण बुद्धि से ग्रहण नहीं करते हैं। वे मानके हैं कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' सम्पूर्ण वेद ही सभी धर्मों का मूल अर्थात् मूल प्रमाण है। 'शब्दप्रमाणका वयं, यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्' (पातञ्जल महाभाष्य)= हम बस वेद

को ही प्रमाण माननेवाले हैं, हमें वेद जो कहता है, सो प्रमाण है। वेदपुरुष का उद्घोष है कि—'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमस्तु पारे। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥' (श्वे० उ०)=मैं उस अज्ञान से परे स्वयं प्रकाश परब्रह्म पुरुष को जानता हूँ; उसको जानकर ही मनुष्य इस दुःखद संसार सागर से तर सकता है—मुक्त हो सकता है, मोक्ष के लिए परब्रह्म को जानने से अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। वेदपुरुष का यह भी स्पष्टोक्ति है कि—'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं'=वेदार्थ को नहीं जाननेवाले उस परब्रह्म को नहीं जान सकते हैं। वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, वेदार्थों का विचार, वैदिक कर्मों का अनुष्ठान, वैदिक मन्त्रों का जप आदि में जिनको विधिवत् उपनयनादि संस्कार हो चुका है वे ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य पुरुष ही शास्त्र सम्मत अधिकारी है। जिनको वेदाध्ययन आदि में साक्षात् अधिकार नहीं है, उन स्त्री शूद्र आदियों को वेदार्थों को सरल रूप से समझाने के लिए ही व्यास आदि परमर्षियों ने महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों की रचना की है। उन इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों का श्रवण स्त्री शूद्रादि ब्राह्मण को आगे रखकर ब्राह्मण के मुख से बस सुन सकते हैं। 'श्रोतव्यमेतच्छूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन' (भविष्य पुराण)= ब्राह्मण को सामने रख कर स्त्रीशूद्र आदि इन इतिहास पुराण आदि शास्त्रों का श्रवण कर सकते हैं, उन्हें कभी भी इनका स्वयं अध्ययन नहीं करना चाहिए। अतः वेद के समान ही इतिहास पुराणादियों का अध्ययन आदि में द्विजातियों का ही अधिकार रह गया। स्त्रीशूद्रादियों को वेद का श्रवण का निषेध था किन्तु इतिहास पुराण आदि शास्त्रों के श्रवण में अधिकार दिया गया है—इन दोनों में बस इतना ही विशेष है।

यह तो कलियुग है ही। यहाँ आजकल ब्राह्मणों का भी

विधिवत संस्कार होता नहीं है। तो दूसरे क्षत्रिय एवं वैश्यों की बात ही क्या है ? संस्कार होने पर भी सन्ध्यावन्दना आदि अपने अपने वर्ण एवं आश्रम के लिए विहित धर्मों का पालन न करने के कारण वे भी स्त्रीशूद्रादियों के समकक्ष में उतर गये हैं। आज-कल इस नास्तिकताप्रचुर एवं वृत्तिप्रधान समाज में उचित समय पर विधिवत् इतिहास पुराणादियों को सुनाने के लिए ब्राह्मण भी मिलना दुर्लभ हो गये हैं। अतः ब्राह्मण को आगे रखकर ब्राह्मण के मुख से इनका हमेशा श्रवण करना भी असम्भव होता जा रहा है। स्त्रीशूद्रादियों को इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों को छोड़कर परमश्रेय के साधन बतानेवाले अन्य कोई साधन भी उपलब्ध नहीं है। अतः परमपुरुषार्थ साधना के विषय में शास्त्र में विश्वास रखनेवाले स्त्रीशूद्र आदियों की दशा आजकल दिन प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है। अतः इसे आपत्काल मानने में कोई आपत्ति नहीं है। पहले से भी इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों के श्रवण में स्त्री शूद्र आदियो को अधिकार था ही। इतिहास पुराण आदि शास्त्रों के अध्ययन आदि में वेदाध्ययन के जैसे उपनयन आदि संस्कारों की आवश्यकता भी नहीं रही। अतः युग के प्रभाव एवं आस्तिक स्त्रीशूद्रादियों की दयनीय परिस्थिति को ध्यान में रखकर आपत्काल समझकर, उन आस्तिक स्त्री शूद्र संस्कारहीन द्विजाति आदियों को भी इतिहास पुराण आदि शास्त्रों का स्वयं अध्ययन आदि में अधिकार दे दिया भी जा सकता है। किन्तु वेदाध्ययन आदि की बात ऐसी नहीं है क्योंकि—वेदाध्ययन आदि के लिए पहले से भी उपनयन आदि संस्कारों की आवश्यकता थी एवं स्त्रीशूद्र आदियों को वेदाध्ययन आदि में पहले भी निषेध था। आज भी संस्कारहीन स्त्री शूद्र आदियों को वेदार्थ को समझाने के लिए इतिहास पुराण आदि शास्त्र मौजूद हैं। अतः आपत्काल कहकर संस्कारहीन

स्त्रीशूद्रादियों को वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, वैदिक मन्त्रों के जप, वैदिक कर्मों को करने आदि में अधिकार नहीं दिया जा सकता है। अतः स्त्रीशूद्रादियों के लिए शास्त्रीय दृष्टि से वेदाध्ययनादि सर्वथा निषिद्ध एवं प्रत्यवायजनक अर्थात् पापजनक ही हैं। अतएव उन्हें इतिहास पुराण आदि शास्त्रों के द्वारा ही वेदार्थों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

इतिहास पुराण आदि शास्त्रों की रचना वेदव्यासादि परमर्षियों ने यद्यपि वेदार्थों का प्रतिपादन करने की उद्देश्य से किया था, किन्तु आज हमारे दुर्दैव की बात है कि वे इतिहास पुराण आदि शास्त्र किसी एक न एक मत के पोषक एवं प्रतिपादक के रूप में परिगृहीत हो चुके हैं। बहुत से आचार्यों ने इतिहास पुराण आदियों को अपने अपने मत को पोषक या प्रतिपादक के रूप में ग्रहण किया और उसके ऊपर अपने अपने नये नये मतों की स्थापना करते गये। यद्यपि उसकी भी उस युग में आवश्यकता रही हो, किन्तु आज परिस्थिति इतनी विकट रूप धारण कर चुकी है कि अब हमें इतिहास पुराण आदि शास्त्रों से वेद प्रतिपाद्य सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का यथार्थस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यन्त दुष्कर हो चुका है। ऐसी परिस्थिति में शास्त्राज्ञाओं में श्रद्धा रखने वाले स्त्री शूद्र संस्कारहीन द्विजाति आदियों को वेदार्थ का प्रतिपादन किस माध्यम से किया जाय, जिससे वे भी वेदप्रतिपाद्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म का साक्षात्कार कर परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर कृतकृत्य हो सकेंगे। ऐसी परिस्थिति में शास्त्रीय परिहार क्या होगा कहकर हमने बहुत से सन्त एवं पण्डितों से विचार विमर्श किया; किन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं पा सके। कुछ सन्त एवं विद्वान् शास्त्रीय उपायान्तर सम्भव नहीं है कहते रहे तो कुछ सन्त एवं विद्वान् अशास्त्रीय अध्ययन आदि

का ही सुझाव देते रहे। अन्त में हमने निराश होकर अनाथनाथ भगवान् विश्वनाथ जी, जगज्जननी भगवती अन्नपूर्णा एवं जगद्गुरु शङ्करावतार श्रीमच्छङ्कराचार्य जी से हार्दिक प्रार्थना करने लगे। हर्ष की बात है कि आज उन्हीं जगत्पिता विश्वनाथ जी एवं जगज्जननी भगवती अन्नपूर्णा जी के अनुग्रह एवं अपार-कारुण्यसागर आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्रीमच्छङ्कराचार्य जी की सत्प्रेरणा ही "वेदान्तानुशासन" के रूप में प्रकट हो रहा है।

सम्पूर्ण वेद को हम चार भागों में बाँट सकते हैं—मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। मन्त्र भाग में विशेषतः देवी-देवताओं की स्तुति है तो ब्राह्मण भाग में उन मन्त्रों का रहस्योद्घाटन करते हुए उनसे यज्ञ याग आदि कर्मों का सम्पादन करने की विधि बताई गई है। यज्ञ याग आदि कर्मों को करने के लिए आवश्यक सामग्रियों के अभाव में मानसिक यज्ञ याग आदियों का एवं इतर उपासनाओं का प्रधानतया आरण्यक भाग में निरूपण है। वेद के चौथे एवं अन्तिम उपनिषद् भाग में प्रधानतया परमार्थ तत्त्व परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण है। जो कोई भी श्रद्धालु साधक इन उपनिषदों के "उप" अर्थात् समीप जाकर "नि" अर्थात् श्रद्धा-भक्ति पुरःसर इनका अनुशीलन करता है उनका सभी सांसारिक क्लेशों का समूल "सादन (सद्)" अर्थात् नाशकर देती है और उस साधक को सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर तक अर्थात् ब्रह्मात्मभाव तक "सादन (सद्)" ले जाती है—पहुँचाती है। अतः इन्हें उपनिषद् कहते हैं। वेदों का अन्त अर्थात् अन्तिम भाग होने के कारण अथवा वेदों का अन्त अर्थात् चरम लक्ष्य या सिद्धान्त परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के स्वरूप निरूपण से भरे रहने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहते हैं।

वेद के मन्त्र ब्राह्मण एवं अरण्यक भाग में प्रधानतया

अन्तःकरण की पुष्टि एवं शुद्धि के साधन ही निरूपित हैं। जिसके साक्षात्कार से परमपुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त होता है उस परमार्थ तत्त्व परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण वेदान्तों में ही है कहकर ये वेदान्त या उपनिषदें ही वेद में प्रधान माने जाते हैं। यद्यपि प्रत्येक वैदिक शाखा अर्थात् आचार्य परम्परा में एक एक उपनिषद् होने के कारण हजारों से भी अधिक उपनिषदों को रहनी चाहिए, तथापि बहुत से वैदिक शाखाओं के काल के प्रवाह में बह जाने के कारण आज हमें करीब दो सौ ही उपनिषदें उपलब्ध हो रही हैं। उनमें भी बहुतों के वैदिक शाखाओं के लुप्त हो जाने के कारण उनका प्रामाण्य सन्देहास्पद ही है। सामान्यतः आचार्य शङ्कर के द्वारा ब्रह्मसूत्रभाष्य आदि में उद्धृत अठारह उपनिषदें प्रामाणिक मानी जाती हैं। इन अठारह उपनिषदों में भी ईशावास्यादि ग्यारह उपनिषदें जिनके ऊपर श्री शङ्कराचार्य जी ने अपने भाष्य भी लिखे हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। यद्यपि तत्त्व जिज्ञासु के लिए सभी उपनिषदें मननीय हैं, तथापि परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के तत्त्व अर्थात् स्वरूप को समझ लेने के लिए ये ग्यारह उपनिषदें ही पर्याप्त हैं —यह सभी सन्त एवं विद्वानों को सम्मत मत है। हमारा यह विनीत विचार है कि वेदाध्ययन आदि के लिए साक्षात् अनधिकारी स्त्री शूद्र संस्कारहीन द्विजाति आदियों के हितार्थ इन ग्यारह उपनिषदों को रूपान्तर में उपदेश करें। पाठक यह ध्यान दें कि यह उपनिषदों का अक्षरानुवाद नहीं है अपितु भावानुवाद है। उपनिषदों के भावानुवाद होने के कारण इनके प्रामाण्य की कोई हानि नहीं होती है। भाव ग्रहण करने में हमने आचार्यप्रवर शङ्कर के भाष्यों का अनुसरण किया है। हाँ; यत्र तत्र भावों का परिष्कार किया भी गया है तो वह वेदान्त सिद्धान्त के अविरुद्ध रहे—इस पर सम्पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। उपनिषदों

का अक्षरानुवाद न होने के कारण इसका वेदत्वनहीं रह गया है। अतः इसके श्रवण में चारों वर्णों के लिए अधिकार है। काल की गति को देखकर एवं आस्तिक स्त्री शूद्र आदि भी अध्ययन आदि कर लें—इस उद्देश्य से ही इन उपनिषदों के अनुशासन अर्थात् पुनरुपदेश किए जाने के कारण, वे आस्तिक स्त्री, शूद्र, संस्कारहीन द्विजाति आदि भी इनका अध्ययन, अध्यापन आदि कर सकते हैं। हाँ, उचित तो यही होगा कि उच्च वर्णों के लिए निम्नवर्ण इसे न पढ़ावें। तात्पर्य यह है कि क्षत्रिय—ब्राह्मणों को, वैश्य—ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को, शूद्र—ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को, एवं स्त्री—अपने समान वर्ण या उच्चवर्ण के पुरुषों को वेदान्तानुशासन का अध्यापन न करें, क्योंकि ऐसे करने पर प्रत्यवाय अर्थात् पाप लग सकता है। यदि कोई किसी भी परिस्थिति के वश में पड़कर अध्यापन आदि कर भी लें तो गुरु एवं शिष्य—दोनों भी भगवद्जन रूप प्रायश्चित अवश्य कर लें एवं परिस्थिति के सुधर जाने पर पुनः वैसे न करें।

पाठक इस विषय पर ध्यान दें कि हम वेदान्तानुशासन में सर्वत्र वैदिक प्रणव ओङ्कार के स्थान पर आनुशासनिक प्रणव ह्लीङ्कार का प्रयोग किये हैं। इसका कारण यह है कि—वैदिक मन्त्र होने के कारण ही वैदिक प्रणव ओङ्कार का जप स्त्री शूद्र आदियों को निषिद्ध है। "सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि विजानीयात् स्त्रीशूद्रः, स मृतोऽधो गच्छति ॥" (नृ० पू० ता० उ० १·३)=सावित्री (गायत्री) लक्ष्मीः, यजुः, प्रणव (ओङ्कार) आदि वैदिक मन्त्रों को यदि स्त्री एवं शूद्र जान लेते हैं तो वे मरने के बाद घोर नरक में जाते हैं; —इस नृसिंह पूर्व तापनी उपनिषद् का उद्धरण हम पहले ही कर चुके हैं। याज्ञवल्क्यसंहिता में भी स्त्रीशूद्रादियों को वैदिकमन्त्रों के जप का निषेध किया गया है। 'न वैदिकं जपेच्छूद्रः स्त्रियश्चैव कदाचन।'=शूद्र एवं स्त्रियों को कभी भी

वैदिक मन्त्रों का जप नहीं करना चाहिए।

कुछ लोगों का कहना है कि वे वैदिक प्रणव ओङ्कार का जप नहीं करते हैं किन्तु वे पौराणिक ओङ्कार का जप करते हैं; तो उनका यह कहना उचित नहीं है क्योंकि—ओङ्कार एकाक्षरी मन्त्र है। 'यश्छन्दसामृषभः' (तै० उ०)='ओङ्कार वैदिक मन्त्रों में श्रेष्ठ है' इत्यादि वेदवचनों से ओङ्कार वेद का प्रधान मन्त्र के रूप में सिद्ध होता है। वेदमन्त्रों के क्रम बदल देने से उन्हें पौराणिक बनाया जा सकता है। ओङ्कार एकाक्षरी मन्त्र होने के कारण उसका क्रम बदलना सम्भव नहीं होने के कारण वह हमेशा वैदिक मन्त्र ही रह जाता है। अतः जहाँ-तहाँ भी इतिहास पुराण आदि शास्त्रों में भी ओङ्कार आया है उसे वैदिक ही समझ लेना चाहिए। हाँ, वेद को नहीं जाननेवाले अपने पुराणादियों में अवैदिक पौराणिक ओङ्कार की रचना कर सकते थे। किन्तु सभी पुराणकर्ता ऋषि वेद को जाननेवाले एवं वेदानुगामी ही रहे हैं। अतः उनके द्वारा अपने पुराणों में वैदिक प्रणव ओङ्कार का अनुवाद ही सम्भव है, न कि नये पौराणिक ओङ्कार की सृष्टि। कोई कालिदास की किसी प्रसिद्ध कविता को जानते हुए उसे अपने पुस्तक में लिख कर यदि कहें कि यह मेरी रचना है, तो कोई भी समझदार व्यक्ति उसे उनका नहीं मानेगा; किन्तु सभी उसे कालिदास का ही मानेंगे। उसी प्रकार वैदिक ओङ्कार को जाननेवाले ऋषि यदि अपने पुराणों में ओङ्कार को लिख देते हैं तो उतने मात्र से वह पौराणिक नहीं बन जाता है; वह वैदिक ओङ्कार ही रह जाता है। यदि कोई कहें कि हम वेदों को न जाननेवालों के द्वारा उपदिष्ट ओङ्कार का ही जप करते हैं तो उन अवैदिक नास्तिकों के द्वारा उपदिष्ट अवैदिक ओङ्कार से अवैदिक नास्तिक दर्शन की साधना करना ही उचित है। वैदिक एवं वेदानुसारी साधन करना हो तो वैदिक एवं वेदानुसारियों

से ही मन्त्र ग्रहण करना उचित है और सो ओङ्कार चाहे वेद में हो या पुराण आदि आस्तिक दर्शनों में—किधर भी हो, उसे सर्वत्र वैदिक मन्त्र ही समझना चाहिए। अतः स्त्रीशूद्रादियों को उसका उच्चारण भी निषिद्ध ही है। अतएव इतिहास पुराण आदि सभी आस्तिक ग्रन्थों में जहाँ भी ओङ्कार आवें तो अपने श्रेय चाहनेवाले सभी स्त्रीशूद्रादियों को उसका उच्चारण नहीं करना चाहिए।

नारदपाञ्चरात्र, जो कि वैष्णव धर्म का प्रधान ग्रन्थ है और जहाँ स्त्रीशूद्रादियों को भगवद्भजन आदि में ब्राह्मणों के समान एवं किन्हीं विषय में ब्राह्मणों से भी अधिक श्रेष्ठ अधिकारी बताया गया है, उसमें भी स्त्री शूद्र आदियों को ओङ्कार का जप हानिकारक बताकर आचार्यों को आदेश दिया गया है कि वे—'स्त्रीशूद्रेभ्यो मनुं दद्यात् स्वाहाप्रणववर्जितम्' (नारदपाञ्चरात्र)=आस्तिक स्त्री शूद्र आदियों को स्वाहा एवं ओङ्कार से रहित मन्त्रों की ही दीक्षा दें। कुलार्णव तन्त्र में भगवान् शङ्करजी स्वयं कहते हैं कि—'स्त्रीशूद्राणामयं मन्त्रो नमोऽन्तश्च सुखावहः। एतज्ज्ञात्वा महेशानि चाण्डालानपि दीक्षयेत्॥'= हे महेश्वरि! स्त्रीशूद्रादियों को 'नमः' शब्द जिस मन्त्र के अन्त में हो वह यह ओङ्कार रहित मन्त्र ही सुखकर है अर्थात् कल्याणकारी है। इस रहस्य को जानकर अपने शिष्यों का हित चाहनेवाले गुरुजनों को चाहिए कि वे चाण्डालादियों को भी ओङ्कार से रहित एवं 'नमः' शब्दान्त मन्त्रों की दीक्षा दें। पुरश्चर्यार्णवकार तन्त्राचार्य शङ्करजी के इस वचन का भी उद्धरण देते हैं कि—'शूद्रस्य प्रणवोच्चारं पुराणासम्मतं प्रिये। तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं तन्त्रोक्तं शूद्रजातिना॥'=हे प्रिये पार्वति! शूद्रों के द्वारा ओङ्कार का उच्चारण पुराणों को भी सम्मत नहीं है। अतः शूद्राब प्रयत्न पूर्वक तन्त्रोक्त ओङ्काररहित मन्त्रों की ही दीक्षा

ग्रहण करें। अतएव हमने भी स्त्री शूद्र संस्कारहीन द्विजाति आदियों को वैदिक प्रणव ओङ्कार का उच्चारण आध्यात्मिक हानि करेगा समझकर वेदान्तानुशासन में सर्वत्र तन्त्रादि शास्त्रों में प्रसिद्ध आनुशासनिक प्रणव ह्रीङ्कार का उपयोग किया है।

पाठक ध्यान देंगे कि यह अनुशासनिक प्रणव ह्रीङ्कार भी वैदिक प्रणव के समान ही महत्त्वपूर्ण है। तन्त्रादि शास्त्रों में ह्रीङ्कार की महिमा मुक्त कण्ठ से गाई गई है। आचार्य शङ्कर भी अपने प्रपञ्चसार तन्त्र में इसकी महिमा ओङ्कार से भी बढ़कर गाये हैं। यह ह्रीङ्कार ओङ्कार से भी शीघ्र सिद्धिप्रद बताया गया है। बहुत से श्रेयस्काम ब्राह्मणादि भी ह्रीङ्कार का अवलम्बन करके साधना करते हैं। विशेषतः स्त्री शूद्रादियों को यह कामधेनु ही है। इस ह्रीङ्कार के द्वारा ही सभी वर्णों के स्त्री एवं पुरुष सगुणब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म—दोनों का भी साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो सकते हैं। अतः जिन स्त्रीशूद्रादियों को शास्त्रों का प्रामाण्य अभिप्रेत है उन्हें यह चाहिए कि वे ओङ्कार के जगह पर ह्रीङ्कार का ही अध्ययन, अध्यापन, जप एवं ध्यान आदि में प्रयोग करें।

ह्रीङ्कार के जप एवं ध्यान आदि के पूर्व इस पुस्तक के प्रारम्भ में ही दिये गये 'ह्रीङ्कारवेद्यमनवद्यसदात्मतत्त्वं....'=इस मन्त्र के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करें। सगुण ब्रह्म की उपासना करना हो तो ह्रीङ्कार का जप करते हुए सगुण ब्रह्म का ध्यान करें। यदि निर्गुण ब्रह्म का ही ध्यान करना हो तो वे 'ह्रीम्' इस मन्त्र में 'ह्'कार को शुद्ध निरुपाधिक ब्रह्म एवं 'र् ई म्'—इन तीन अक्षरों को सत्त्वरजस्तमोरूप या भूतवर्तमान-भविष्यद्रूप या उत्पत्तिस्थितिसंहाररूप या भूर्भुवस्वःस्वरूप मायिक जगत् के रूप में ध्यान करें। 'ह्' रूप परब्रह्म में परब्रह्म के अज्ञान के कारण 'रीम्' रूप मायिक जगत् कल्पित है। सम्पूर्ण

'रीम्' रूप जगत् 'ह्' रूप परब्रह्म में से ही उत्पन्न होता है, उन्हीं में स्थित रहता है एवं अन्त में उन्हीं में मिल जाता है। जिस प्रकार समुद्र से उत्पन्न होने वाले, समुद्र में रहनेवाले एवं अन्त में समुद्र में ही मिल जानेवाले तरङ्ग समुद्र से भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार 'ह्'कार रूप ब्रह्म से उत्पन्न होनेवाले, उसी में रहनेवाले एवं अन्त में उसी में मिल जानेवाले 'रीम्' रूप समस्त जगत् भी 'ह्'कार रूप परब्रह्म से भिन्न नहीं है। वस्तुतः 'रीम्' रूप जगत् 'ह्'कार रूप परब्रह्म ही है। 'ह्'कार रूप परब्रह्म एवं 'रीम्' रूप जगत् में कोई भेद नहीं है। भेद की प्रतीति बस अज्ञान से ही हो रहा है। जब ह्रीङ्कार की अखण्ड उपासना एवं जप से अन्तः-करण शुद्ध हो जायगा तब सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म से अभिन्न ही प्रतीत हो जायेगा एक अखण्ड 'ह्रीम्'—ह्रीङ्कारवाच्य एवं ह्रीङ्कारलक्ष्य अपर एवं परब्रह्म ही अनुभव में आ जायेगा। साधक को इसी भाव से ह्रीङ्कार की उपासना करना चाहिए। ह्रीङ्कार मन्त्र के द्वारा थोड़ा देर तक अपने इष्ट भगवान का ध्यान करके तदनन्तर निर्गुण वेदान्तानुशासन-समधिगम्य परब्रह्म का भी चिन्तन कर सकते हैं। ह्रीङ्कार से सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म दोनों का भी साक्षात्कार अत्यन्त सुलभ एवं सुकर है। ह्रीङ्कारोपासना के विषय में विशेष प्रकाश आगे प्रणवानुशासन में डाला जायेगा।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि कोई इस वेदान्तानुशासन का विधिवत् श्रवण करें, स्वयं श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक इनका पठन करें, मनन करें एवं ह्रीङ्कार के माध्यम से उपर्युक्त विधि से अनुसन्धान करें तो वे अवश्य वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का साक्षात्कार कर इस दुःखद संसार सागर से हमेशा के लिए छुटकारा पा सकेंगे एवं ब्रह्मानन्द के भागी बन सकेंगे।

अन्त में हम वेदान्तानुशासन का श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक

अनुशीलन करनेवाले सभी मुमुक्षुओं को तत्त्वज्ञान प्रदान करने के लिए अनाथनाथ भूतभावन श्री विश्वनाथ जी से प्रार्थना करते हैं; जगज्जननी अन्नपूर्णा जी से मनवाते हैं; आचार्य प्रवर शङ्कर जी से अनुनय करते हैं; सभी विद्वन्जनों से वेदान्तानुशासन का अर्थ प्रकाशन के लिए निवेदन करते हैं एवं स्वयं सभी को भाव भरे हृदय से यथाशक्ति आशीर्वाद देते हैं। इति शम् ॥

मदीयसेवाग्रहणाय भूमौ
स्त्रीशूद्रदेहेष्वनुसम्प्रविष्टौ ।
उमामहेशौ जगतामधीशौ
तत्त्वप्रबोधेन समर्चयामि ॥*

—इति श्रीमच्छङ्करभगवत्पूज्यपादाब्जमधुपः

भाद्रपद पूर्णिमा, सं० २०३५ ईश्वराश्रमः

—ം*ം—

---

* मेरी सेवा को ग्रहण करने के लिए स्त्रीशूद्रादियों के शरीरों में जीव-रूप में प्रविष्ट जगदीश्वर भगवती उमा अर्थात् अन्नपूर्णा जी एवं भगवान् महेश्वर विश्वनाथ जी की मैं तत्त्वोपदेश के द्वारा पूजा करता हूँ ॥

॥ श्रवणविधि ॥

"श्रवण मनन एवं निदिध्यासन"—ये तीन ही वेदान्त-प्रतिपाद्य सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के साक्षात्कार के साक्षात् साधन हैं। सम्प्रदायवित् सद्गुरु के मुखारविन्द से वेदान्त वाक्यों के द्वारा वेदान्तैकसमधिगम्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्मपरमात्मतत्त्व का तत्त्वनिर्णय कर लेना ही श्रवण है। इस प्रकार सद्गुरु के मुखारविन्द से श्रुत परब्रह्म-परमात्मतत्त्व का युक्तियों के द्वारा दृढ़ कर लेना ही मनन है। तथा मनन से दृढ़ीकृत (निश्चित) परब्रह्म परमात्मतत्व का निरन्तर ध्यान करना ही निदिध्यासन है। इससे यह स्पष्ट है कि मनन एवं निदिध्यासन श्रवण के ही आश्रित हैं। अतः साधक मुमुक्षु को श्रवण के बारे में उपेक्षा न करनी चाहिए; श्रवण को प्रधान साधना समझ कर उसमें श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक प्रवृत्त होनी चाहिए। वेदान्तदीक्षा मन्त्र देने मात्र से या आसन प्राणायाम आदि सिखाने मात्र से नहीं होती है। वेदान्तदीक्षा तो वेदान्त अर्थात् उपनिषदों को विधिवत् सुनाने से ही होती है। अतः मुमुक्षु साधकों को चाहिए कि वे अपने सभी मिथ्या दुरभिमानों को त्यागकर वेदान्तप्रतिपाद्य तत्त्व को समझाने में कुशल सम्प्रदायवित् सद्गुरु के पास फल-पुष्प आदि उपहार के साथ उपसन्न हों—श्रद्धा भक्ति एवं विनयपूर्वक शरण जावें एवं उनके मुखारविन्द से विधिवत् मङ्गलाचरण एवं शान्तिपाठपूर्वक वेदान्त कर श्रवण करें। वेदाध्ययन के साक्षात् अनधिकारियों को भी इस वेदान्तानुशासन का उसी प्रकार गुरुमुख से मङ्गलाचरण एवं शान्तिपाठपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। यह अनुभूत

तथ्य है कि वक्ता के विरक्त, विद्वान् एवं साधक या सिद्ध होने पर श्रवण अत्यन्त हृद्य एवं सफल होता है। अतः साधक मुमुक्षुओं को चाहिए कि यथासम्भव विरक्त, विद्वान एवं सिद्ध या साधक गुरु से ही वे इसकी श्रवण करें। केवल पुस्तकी विद्वानों से भी सद्‌गुरुपरम्परा से जिन्होंने वेदान्त का श्रवण किया है, वे गुरु श्रवण कराने में अधिक कुशल एवं समर्थ होते ही हैं।

अध्ययन एवं अध्यापन के पूर्व गुरु एवं शिष्य—दोनों भी हाथ-पाँव धोकर अपनी इष्ट देवता एवं उपस्थित सभी गुरुजनों को प्रणाम करके शुद्ध आसन में बैठें। गुरु एवं शिष्यों का उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठना उचित माना जाता है। तदनन्तर गुरु एवं शिष्य दोनों भी श्रद्धा एवं भक्ति पुरःसर मङ्गलाचरण एवं शान्तिपाठ का पाठ करें। तत्पश्चात् गुरु निष्काम एवं निष्कपट भाव से यथाशक्ति परम्परागत वेदान्त विज्ञान का निरूपण करें एवं उसे शिष्य अपने मिथ्या दुरभिमान को छोड़कर, विनीत होकर श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक श्रवण करें। श्रवणानन्तर गुरु एवं शिष्य दोनों भी पुनः मङ्गलाचरण एवं शान्तिपाठ का पाठ करें। तदनन्तर शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को प्रणाम कर के खड़े हों एवं गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा करें। शिष्य को चाहिए कि वह गुरु की आज्ञा पाकर या गुरु के उठ जाने के बाद ही अध्ययन के स्थान छोड़ कर जावें। शिष्य इस बात को याद रक्खें कि जिनको वेदान्त प्रतिपाद्य परतत्त्व में जिस प्रकार उत्कट श्रद्धा रहती है उसी प्रकार अपने वेदान्तोपदेष्टा गुरुदेव में ही श्रद्धा रहती है—वे ही वेदान्तवेद्य परतत्त्व को समझ सकते हैं—साक्षात्कार कर सकते हैं।

वेदान्तानुशासन का विधिवत् श्रवण के साथ ही श्रोता को सदाचारी बनने का भी पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

वेदान्तानुशासन सफल होने के लिए वेदान्तानुशासन के अध्येता एवं अध्यापक दोनों को भी सदाचारी होना अनिवार्य आवश्यक है। तभी वे वेदान्तानुशासन की पठन एवं पाठन से मोक्ष रूप फल प्राप्त कर सकते हैं। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, परोपकार आदि सद्धर्मों के व्रत के पालनपूर्वक किये गये वेदान्तानुशासन का श्रवण शीघ्र फल देता है। श्रोता एवं वक्ता दोनों को भी अपने अपने स्ववर्णाश्रमविहित धर्म का यथाशक्ति पालन करना चाहिए। सन्ध्या के समय अपने अपने अधिकार के अनुसार सन्ध्या-वन्दन-भगवद्भजन आदि करना चाहिए। सन्ध्या के समय वेदान्तानुशासन का अध्ययन एवं अध्यापन निषिद्ध है। वेदान्तानुशासन का अध्ययन या अध्यापन करने-वाले को मित एवं सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए। पेट भर खाकर, मांस या बासी आदि अमेध्य भक्षण करके किया हुआ वेदान्तानुशासन का अध्ययन सफल हो नहीं सकता है। काम क्रोध आदि से विक्षुब्ध अन्तःकरणवाले होकर वेदान्तानुशासन का पठन एवं पाठन न करें। वेदान्तानुशासन के अध्ययन एवं अध्यापन का लक्ष्य पाण्डित्य की प्राप्ति, या दूसरों को वाद में पराजित करना या केवल अपने कुतूहल को शान्त कर लेना आदि नहीं हों; किन्तु वेदान्तैकसमधिगम्य परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का साक्षात्कार रूप मोक्ष ही हो—तभी श्रवण का उचित फल प्राप्त हो सकता है। वेदान्त एवं वेदान्तानुशासन मोक्ष रूप फल देने में समर्थ कल्पवृक्ष ही है, अतः मुमुक्षुओं को इनसे मोक्ष रूप फल को ही चाहना चाहिए। हाँ, केवल मोक्ष की इच्छा रखने मात्र से फल प्राप्त नहीं हो सकती है। फल प्राप्ति के लिए शास्त्रों में विहित विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान आदि साधना सम्पत्तियों की सम्प्राप्ति में यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए एवं तत्परता से वेदान्तानुशासन

श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिए। इस प्रकार वेदान्तानुशासन का अध्ययन एवं अध्यापन मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से करें तो साधक मुमुक्षु इससे मोक्ष रूप फल अवश्य ही प्राप्त करेंगे—इसमें सन्देह नहीं है। इति शम् ॥

—❀—

॥ मङ्गलाचरण ॥

वेदान्तानुशासन के अध्ययन एवं अध्यापन के पूर्व एवं पश्चात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निम्नलिखित मङ्गलाचरण अवश्य कर्तव्य है—

ह्रीम् ॥ अखण्डं सच्चिदानन्दं अवाङ्मनसगोचरम् ।
आत्मानमखिलाधारं आश्रयेऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

मैं अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए मन एवं वाणी के अविषय सर्वाधार सच्चिदानन्दस्वरूप अखण्ड अर्थात् अद्वै आत्मा का आश्रय लेता हूँ ॥१॥

यस्य प्रसादादहमेव विष्णु-
र्मय्येव सर्वं परिकल्पितं च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं
तस्याङ्घ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥२॥

जिन गुरुदेव के प्रसाद से मैं अपने परमार्थ सत्य आत्म स्वरूप को इस प्रकार समझ सका हूँ कि मैं स्वरूपतः विष्

अर्थात् सर्वव्यापक परब्रह्म ही हूँ एवं समस्त विश्व मुझ में ही परिकल्पित है, उन गुरुदेव के चरणारविन्दों को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥२॥

यदालम्बो दरं हन्ति सतां प्रत्यूहसम्भवम् ।
तदालम्बे दयालम्बं लम्बोदरपदाम्बुजम् ॥३॥

जिनके आश्रय ग्रहण करने से सन्तों के सभी सम्भावित विघ्न नष्ट हो जाते हैं, उन करुणालय लम्बोदर अर्थात् गणेश जी के चरणारविन्दों का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥३॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे
भवं भवानीसहितं नमामि ॥४॥

जो इस प्रतिक्षण परिणामी—विनाशोन्मुख संसार में सार अर्थात् अपरिणामी—अविनाशी परमार्थ सत्य पदार्थ हैं या इस असार संसार में सार अर्थात् प्राप्त करने योग्य उत्कृष्ट फलस्वरूप परब्रह्म ही हैं—ऐसे वेदान्तैकसमधिगम्य मन एवं वाणी के अविषय परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर होते हुए भी जिन्होंने सांसारिक दुःखों से अत्यन्त सन्तप्त जीवों को देखकर करुणा से उनको अनुग्रहीत करने की इच्छा से कर्पूर के समान शुभ्र शरीर धारण किये हैं एवं समस्त प्राणियों के हृदयारविन्द में सर्पराजरूप माला आदि विलक्षण भूषणों को धारण कर जगज्जननी भगवती अन्नपूर्णा जी के साथ विराजमान हैं, उन समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश के एक मात्र कारण

विश्वेश्वर भगवान भव अर्थात् शङ्कर जी को मैं प्रणाम करत
हूँ ॥४॥

ह्रीं नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये ।

निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥५॥

ह्रीङ्कारस्वरूप, प्रणव=ओङ्कार या ह्रीङ्कार के प्रतिपा
अर्थभूत, शुद्धप्रज्ञानघनविग्रह अविद्या रूप मल से रहित
प्रशान्त अर्थात् संसार से परे स्थित श्री दक्षिणामूर्ति भगवा
(शङ्कर जी) को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम् ।

गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥६॥

सभी विद्याओं की निधि, संसार रूप रोग से ग्रस्त जीव
मात्र के वैद्य अर्थात् चिकित्सक एवं सभी जीवों के मोक्षोपदेष्ट
गुरु श्री दक्षिणामूर्ति भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

वक्तारमासाद्य यमेव नित्या

सरस्वती सारसमन्विताऽऽसीत् ।

निरस्तदुस्तर्ककलङ्कपङ्का

नमामि तं शङ्करमर्चिताङ्घ्रिम् ॥७॥

जिन वक्ता को पाकर नित्य वाणी अर्थात् वेद दुस्त
रूप कलङ्क अर्थात् दोष से रहित होकर सारयुक्त अर्थात् मो
रूप फल देने में समर्थ हो गई उन पूज्यपाद आचार्य शङ्कर
मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

ह्लीं नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो
वंशऋषिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः ॥८॥

ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक ब्रह्मादि परम्परा के गुरुजन महान् ऋषियों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥८॥

सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि,
ब्रह्मैवाहमस्मि ॥९॥

मैं सभी सांसारिक क्लेशों से रहित, प्रज्ञान घन, प्रत्यगात्मा—अन्तरात्मा परब्रह्म ही हूँ—मैं परब्रह्म ही हूँ ॥९॥

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं
शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं
गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥१०॥

श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्म-
पादञ्च हस्तामलकञ्च शिष्यम् ।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यान्
अस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि ॥११॥

वेदान्त एवं ब्रह्मविद्या के प्रवर्तकाचार्य आदिनारायण, श्रीमन्नादिनारायण के पुत्र पद्मसम्भव ब्रह्मा जी, ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ जी, वशिष्ठ जी के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर, पराशर के पुत्र व्यास जी, व्यास जी के पुत्र शुकदेव, शुकदेव जी

के शिष्य गौडपादाचार्य, गौडपादाचार्य के शिष्य योगीश्वर गोविन्द भगवत्पादाचार्य, गोविन्द भगवत्पादाचार्य के शिष्य श्रीमच्छङ्कराचार्य, श्रीमच्छङ्कराचार्य के चार शिष्य पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, हस्तामलकाचार्य एवं तोटकाचार्य तथा हमारे अन्य गुरुओं को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥१०-११॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥१२॥

श्रुति स्मृति एवं पुराणों का आलय=आश्रय अर्थात् मर्मज्ञ उद्धारक एवं रक्षक, करुणा के निधान, समस्त लोकों का हित करनेवाले पूज्यपाद श्रीमच्छङ्कराचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥१३॥

व्यास जी के रूप में अवतरित होकर ब्रह्म-सूत्रों की रचना करनेवाले भगवान श्रीमन्नारायण एवं श्रीमच्छङ्कराचार्य जी के रूप में अवतरित होकर उन व्यासरचित ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखनेवाले भगवान् शङ्कर जी—इन दोनों भगवानों को मैं बार बार नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥१४॥

जो स्वयं आकाश के समान निरवयव एवं व्यापक होते हुए भी इस जगत् में ईश्वर, गुरु एवं आत्मा—इन तीन रूपों में

विभक्त प्रतीत होते हैं, उन भगवान् श्री दक्षिणामूर्ति भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीढ्यं भवरोगवैद्यं
अस्मद्गुरुं सन्ततमानतोऽस्मि ॥१५॥

स्वयं आनन्दस्वरूप, सभी को आनन्द देनेवाले या सभी को अपने आनन्दात्मस्वरूप का ज्ञान करानेवाले, सर्वदा प्रसन्न रहनेवाले, स्वयं ज्ञान स्वरूप, अपनी आत्मा के यथार्थ स्वरूप के अनुभव से युक्त, संसार रूप रोग का निवारक वैद्य, स्तुति करने के लिए योग्य, योगियों में श्रेष्ठ—मेरे-हमारे श्रीगुरुदेव को मैं हमेशा नमस्कार करता हूँ—हम हमेशा नमस्कार करते हैं ॥१५॥

यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः ।
व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥१६॥

इसके पूर्व भी जिन गुरुओं ने इन सभी वेदान्तों की पदशः एवं वाक्यशः प्रमाणप्रदर्शनपूर्वक व्याख्या की हैं, उन सभी पूर्वाचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम् ।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम् ॥१७॥

जिनकी केवल स्मृति ही सभी अशुभों को दूर कर देती है एवं सभी मङ्गलों का विस्तार करती है, वह वेदान्तप्रतिपाद्य सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म ही श्रेष्ठतम मङ्गलस्वरूप एवं मङ्गलकारक हैं ॥१७॥

अतिकल्याणरूपत्वान् नित्यकल्याणसंश्रयात् ।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः ॥१८॥

जिनके स्वरूप के साक्षात्कार से सभी जीव को आत्यन्तिक श्रेय-मोक्ष करामलकवत् सुलभ हो जाता है, वैसे परम कल्याण स्वरूप, सदैव परम श्रेय-मोक्ष का आश्रय—मोक्ष स्वरूप एवं स्मरण करने वाले सभी जीवों को परम श्रेय—मोक्ष रूप वर अर्थात् फल देने के कारण, विद्वान् लोग वेदान्तप्रतिपाद्य सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म को ही श्रेष्ठतम मङ्गल एवं मङ्गल-कारक समझते हैं ॥१८॥

हकारः परमं ब्रह्म रीमिति मायिकं जगत् ।
सर्वात्मकं भवेत्तस्माद् 'ह्रीम्' इति ब्राह्ममक्षरम् ॥१९॥

'ह्रीम्' इस एकाक्षर मन्त्र में हकार वेदान्तप्रतिपाद्य सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म का प्रतीक है एवं रीम्—यह अक्षर नामरूपात्मक मायिक जगत् का प्रतीक है। अतएव निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म दोनों का प्रतीकभूत 'ह्रीम्' यह ब्राह्म अक्षर सर्वात्मक है ॥१९॥

ह्रीं तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥२०॥

ह्रीङ्कार से लक्षित होनेवाले वह वेदान्तप्रतिपाद्य परमार्थ-सत्य परब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

उपर्युक्त मङ्गलाचरण अध्ययन एवं अध्यापन के पूर्व करने के लिए हैं। अध्ययन एवं अध्यापन के बाद निम्नलिखित मङ्गलाचरण कर्तव्य है—

ह्रीं नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो
वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः ॥१॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥२॥

ह्रीं नमः प्रणावार्थाय शुद्धज्ञानैक मूर्त्तये ।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥३॥

निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम् ।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥४॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥५॥

यस्य प्रसादादहमेव विष्णु-
मंय्येव सर्वं परिकल्पितं च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं
तस्माङ्घ्रिपद्मं प्रणातोऽस्मिनित्यम् ॥६॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञावस्वरूपं निजबोधयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीढ्यं भवरोगवैद्यं
अस्मद्गुरुं सन्ततमानतोऽस्मि ॥७॥

सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि,
ब्रह्मैवाहमस्मि ॥८॥

(इन सभी मन्त्रों की व्याख्या पहले ही की गई है)

—✿—

॥ शान्तिपाठः ॥

वेदान्तानुशासन के अध्ययन एवं अध्यापन के पूर्व एवं पश्चात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निम्नलिखित शान्तिपाठ अवश्य कर्तव्य हैं—

(१)

ह्रीं हरिः ॥

आप्यायन्तु ममाङ्गानि बलमस्त्विन्द्रियेषु मे ।
ब्रह्मौपनिषदं सर्वं इति विद्यामहं सदा ॥
माहं ब्रह्म निराकुर्यां निराकुर्याच्च तन्न माम् ।
अनिराकरणं मेऽस्तु अनिराकृतिरस्तु मे ॥
मयि ह्यात्मविजिज्ञासौ यथाशक्त्यनुवर्तिनि ।
सर्वोपनिषदो धर्मा आविर्भवन्तु सर्वदा ॥
सर्वेऽपि मयि ते धर्मा आविर्भवन्तु सर्वदा ।
ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः=समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या रूप पाप को नाश करने वाले ह्रीङ्कारलक्ष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म हरि को मैं नमस्कार करता हूँ—मैं अपने सांसारिक क्लेशों के आत्यन्तिक नाश के लिए उनके शरण में

जाता हूँ। उनकी कृपा से मम=मेरे (सर्वाणि)=सभी अङ्गानि=अङ्ग आप्यायन्तु=पुष्ट हों। मे=मेरी इन्द्रियेषु=इन्द्रियों में बलं अस्तु=बल हों। 'सर्वं औपनिषदं ब्रह्म'=ब्रह्मादि पिपीलिकान्त समस्त नामरूपात्मक जगत् उपनिषदेकसमधिगम्य सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म ही हैं'—इति=इस प्रकार अहं=मैं सदा=हमेशा विद्यां=जानूँ-जान लूँ॥

अहं=मैं ब्रह्म=वेदान्त प्रतिपाद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म का मा निराकुर्याम्=निराकरण न करूँ। अर्थात् मैं ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए शास्त्रों में विहित साधनों को कभी तिरस्कार न करूँ—साधनों के अनुष्ठान से कभी प्रमाद न करूँ॥ च=तथा तत्=वह ब्रह्म भी मां=मेरा न निराकुर्यात्=तिरस्कार न करें अर्थात् मुझे अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर दें। मे=मेरी ओर से अनिराकरणं अस्तु=परब्रह्म का—परब्रह्म प्राप्ति के साधनों के अनुष्ठान का निराकरण न हो। मे=मेरे लिए ब्रह्म की ओर से भी अनिराकृतिः अस्तु=निराकरण अर्थात् तिरस्कार न रहे। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म मुझे अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर दें। दो बार एक ही बात की आवृत्ति आदरातिशय के द्योतन के लिए समझना चाहिए॥

च=तथा यथाशक्त्यनुवर्तिनि=अपनी शक्ति भर शास्त्रोक्त उपदेश के अनुसार बर्तनेवाले मयि=मुझ आत्मविजिज्ञासौ=आत्मा को जानने की इच्छा रखनेवाले में सर्वोपनिषदः धर्माः=सभी उपनिषदों में उपदिष्ट धर्म अर्थात् साधन सर्वदा=हमेशा आविर्भवन्तु=प्रकट हों। मयि=मुझ में सर्वे अपि ते धर्माः=वे सभी धर्म सर्वदा=हमेशा आविर्भवन्तु=प्रकट रहें॥

ह्रीं (नमः)=हे ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्मन्! आपको नमस्कार! आपकी कृपा से (मम)=मेरे (आध्यात्मिकानां तापानां)=

आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। (मम)=मेरे (आधिभौतिकानां तापानां =आधिभौतिक ताप-दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। एवं (मम)=मेरे (आधिदैविकानां तापानां)=आधिदैविक तापों की—दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय ॥

(२)

ह्रीं हरिः ॥

वाङ्मे भूयान्मनोनिष्ठा मनो वाचि प्रतिष्ठितम् ।
आविर्ब्रह्म नमस्तेऽस्तु सदाऽऽविर्भव मे हृदि ॥
वेदमानय मे नित्यं गोपायाथ श्रुतं मम ।
श्रुतेनानेन चात्मानं प्रध्यायेयमहर्निशम् ॥
सत्यमेव वदिष्यामि वदिष्यामि तथा ऋतम् ।
नित्यं मामवतु ब्रह्म वक्तारं च तथा गुरुम् ॥
अवतु ब्रह्म मां नित्यं वक्तारं च तथा गुरुम् ।
ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः=समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या रूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्म हरि को मैं नमस्कार करता हूँ—मैं अपने सांसारिक क्लेशों के आत्यन्तिक नाश के लिए उनके शरण जाता हूँ। उनकी कृपा से—मे=मेरी वाक्=वाणी मनोनिष्ठा भूयात्=मनोनिष्ठ हो

जाय। तात्पर्य यह है कि वाणी मन में जो अच्छी बातों को सोचा है उन्हें ही बोले—वाणी निष्कपट हो जाय। तथा (मे)= मेरे मनः=अन्तःकरण वाचि=वाणी में प्रतिष्ठितं (भूयात्)= प्रतिष्ठित हो जाय। वाणी जो कुछ भी अच्छी बातें बोलती हैं या पाठ करती हैं—मन उसी का चिन्तन करें; उसके विरुद्ध बुरे विचार न करें। अपने सदुपदेश या सत्प्रतिज्ञा के विरुद्ध विचार न करें।

हे आविर्ब्रह्म !=हे स्वयं-प्रकाशस्वरूप परब्रह्मन् ! ते=आप को (मम)=मेरे नमः अस्तु=नमस्कार रहे। (त्वं)=आप मे=मेरे हृदि=हृदय में सदा=हमेशा आविर्भव=प्रकट होइये—रहिए। (तथा त्वं =तथा आप मे=मेरे (समीपं)=पास नित्यं=हमेशा वेदं=वेद को-परमार्थ ज्ञान को आनय=लाइए अथ=और मम=मेरे-मेरे द्वारा श्रुतं=सुने हुए वेद या ज्ञान की गोपाय=रक्षा कीजिए। तात्पर्य यह है कि—आप की कृपा से मुझे वेदाध्ययन एवं सत्संग के अवकाश बार बार मिलते रहे एवं अध्ययन किये वेद एवं सत्संग में सुने हुए सदुपदेश एवं ज्ञान का मुझे विस्मरण भी न हो।

च=और (अहं)=मैं अनेन श्रुतेन (शास्त्रेण ज्ञानेन वा)=इस गुरुमुख से सुने हुए शास्त्र या ज्ञान के बल से अहर्निशं=दिन और रात—लगातार आत्मानं=आत्मा का प्रध्यायेयं=भलीभाँति ध्यान करूँ।

(अहं)=मैं सत्यं एव=सत्य अर्थात् व्यावहारिक सत्य को ही वदिष्यामि=बोलूँगा। तात्पर्य यह है कि व्यवहार में मैं हमेशा व्यावहारिक सत्य को ही बोलूँगा। तथा=उसी प्रकार (अहं)=मैं ऋतं (एव)=पारमार्थिक सत्य को ही वदिष्यामि=बोलूँगा। तात्पर्य यह है कि—व्यावहारिक सत्य के पारमार्थिक सत्य न

होने के कारण मैं हमेशा जिज्ञासु अधिकारियों के बीच में पारमार्थिक सत्य-परब्रह्म का ही निरूपण करूँगा। निर्गलितार्थ यह है कि मैं आवश्यकता एवं औचित्य के अनुसार व्यावहारिक या पारमार्थिक सत्य को ही बोलूँगा, कभी भी असत्य भाषण नहीं करूँगा।

ब्रह्म=ब्रह्म नित्यं=हमेशा मां=मेरी अवतु=रक्षा करें। च=एवं तथा=इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरु की भी अवतु=रक्षा करें। ब्रह्म=ब्रह्म नित्यं=हमेशा मां=मेरी अवतु=रक्षा करें। च=एवं तथा=इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरु की भी अवतु=रक्षा करें॥

ह्रीं (नमः)=हे ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्मन्! आप को नमस्कार। आप की कृपा से (मम)=मेरे (आध्यात्मिकानां तापानां(=आध्यात्मिक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय (मम)=मेरे (आधिभौतिकानां तापानां)=आधिभौतिक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। (मम)= मेरे (आधिदैविकानां तापानां)=आधिदैविक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय॥

(३)

(यह शान्तिपाठ केवल अध्ययन एवं अध्यापन के प्रारम्भ में करने का है)

ह्रीं हरिः॥

शन्नस्तनोतु मित्रोऽसौ शं वरुणास्तनोतु नः।
शं तनोत्वर्यमा नित्यं शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः॥

शन्नस्तनोतु विष्णुश्च शन्नो निखिलदेवताः ।
ब्रह्मणे च नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु च वायवे ॥
प्रत्यक्षं त्वमसि ब्रह्म इति मे निश्चिता मतिः ।
सत्यमेव वदिष्यामि वदिष्यामि तथा ऋतम् ॥
नित्यं मामवतु ब्रह्म वक्तारं च तथा गुरुम् ।
अवतु ब्रह्म मां नित्यं वक्तारं च तथा गुरुम् ॥
ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः=समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या रूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्म हरि को हम नमस्कार करते हैं—हम अपने सांसारिक क्लेशों के आत्यन्तिक नाश के लिए उनके शरण में जाते हैं। उनकी कृपा से—असौ=वह प्राणवृत्ति एवं दिन के अभिमानी देवता मित्रः= मित्र अर्थात् सूर्य भगवान् नः=हमारे-हमारे लिए शं=सुख या कल्याण का तनोतु=विस्तार करें। तथा वरुणः=अपानवृत्ति एवं रात्री के अभिमानी देवता वरुण नः=हमारे-हमारे लिए शं= सुख या कल्याण का तनोतु=विस्तार करें। तथा अर्यमा=चक्षु एवं आदित्य मण्डल के अभिमानी देवता अर्यमा (नः)=हमारे-हमारे लिए नित्यं=हमेशा शं=सुख या कल्याण का तनोतु= विस्तार करें। तथा इन्द्रः=बल के अभिमानी देवता इन्द्र (च)= एवं बृहस्पतिः=बुद्धि के अभिमानी देवता बृहस्पति नः=हमारे-हमारे लिए शं=सुख या कल्याण का (तनोतु)=विस्तार करें। च=तथा विष्णुः=पाद के अभिमानी देवता विष्णु भगवान् नः=हमारे-हमारे लिए शं=सुख या कल्याण का तनोतु=विस्तार

करें। तथा निखिलदेवताः=सभी देवताएँ नः=हमारे लिए शं=सुख या कल्याण का (तन्वन्तु)=विस्तार करें॥

च=और अब (अहं)=मैं तुभ्यं=आप वेदान्तैकसमधिगम्य सच्चिदानन्दघनस्वरूप ब्रह्मणे=परब्रह्म को-का नमः (करोमि)=नमस्कार करता हूँ अर्थात् मेरे से अभिन्न मेरी अन्तरात्मा के रूप में अनुसन्धान करता हूँ। च=और ते वायवे=सभी प्राणियों के शरीर में जीवनहेतु प्राण के रूप में स्थित सगुण ब्रह्म आप वायु को (मम)=मेरा नमः अस्तु=नमस्कार रहे। (हे वायो!)=हे वायो! त्वं=आप प्रत्यक्षं=साक्षात्—इन्द्रियों के विषयीभूत अर्थात् विषय होनेवाले ब्रह्म (एव) असि=परब्रह्म ही हैं—अर्थात् मन एवं वाणी के अगोचर परब्रह्म ही आप प्राण-वायु के रूप में साक्षात् मन एवं वाणी के गोचर होकर स्थित हैं—इति=इस प्रकार मे=मेरी निश्चिता मतिः (वर्तते)=निश्चित बुद्धि है—अर्थात् दृढ़ विश्वास है॥

(अहं)=मैं सत्यं एव=सत्य अर्थात् व्यावहारिक सत्य को ही वदिष्यामि=बोलूँगा। तात्पर्य यह है कि व्यवहार में मैं हमेशा व्यावहारिक सत्य को ही बोलूँगा। तथा=उसी प्रकार (अहं)=मैं ऋतं (एव)=पारमार्थिक सत्य को ही वदिष्यामि=बोलूँगा। तात्पर्य यह है कि—जिज्ञासु अधिकारियों के बीच में मैं पारमार्थिक सत्य परब्रह्म का ही निरूपण करूँगा। इस प्रकार मैं आवश्यकता एवं औचित्य के अनुसार व्यावहारिक या पारमार्थिक सत्य को ही बोलूँगा—कभी भी असत्य-भाषण नहीं करूँगा॥

ब्रह्म=सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म नित्यं=हमेशा मां=मेरी अवतु=रक्षा करें च=एवं तथा=इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरुदेव की भी अवतु=रक्षा करें। ब्रह्म=ब्रह्म नित्यं=हमेशा मां=मेरी अवतु=रक्षा करें च=एवं तथा=

इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरुदेव की भी अवतु=रक्षा करें॥ एक ही बात की दो बार आवृत्ति आदरातिरेक की अभिव्यक्ति के लिए है॥

ह्रीं (नमः)=हे ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्मन्! आपको नमस्कार। आप की कृपा से—(मम)=मेरे (आध्यात्मिकानां तापानां)= आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। (मम)=मेरे (आधिभौतिकानां तापानां)=आधि-भौतिक ताप अर्थात् दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। एवं (मम)=मेरे (आधिदैविकानां तापानां)= आधिदैविक ताप अर्थात् दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय॥

(उपर्युक्त शान्तिपाठ का पाठ अध्ययन एवं अध्यापन के प्रारम्भ में ही किया जाता है। अध्ययन एवं अध्यापन के पश्चात् उपर्युक्त शान्तिपाठ के जगह पर निम्नलिखित शान्तिपाठ का पाठ करें॥)

ह्रीं हरिः॥

शन्नस्तनोतु मित्रोऽसौ शं वरुणस्तनोतु नः।
शं तनोत्वर्यमा नित्यं शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः॥
शन्नस्तनोतु विष्णुश्च शन्नो निखिलदेवताः।
ब्रह्मणे च नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु च वायवे॥
प्रत्यक्षं त्वमसि ब्रह्म इति मे निश्चिता मतिः।
वदिष्यामि ऋतं सत्यं ऋतं सत्यमवादिषम्॥

नित्यं ब्रह्मैव मामावीद् ववतारं च तथा गुरुम् ।
अवतु ब्रह्म मां नित्यं वक्तारं च तथा गुरुम् ॥
ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः से लेकर इति मे निश्चिता मतिः पर्यन्त की व्याख्या पहले के जैसी ही है। तदनन्तर—(अहं)=मैं आवश्यकता एवं औचित्य के अनुसार ऋतं=परमार्थ सत्य ऋत च=एवं सत्यं=व्यावहारिक सत्य को ही वदिष्यामि=बोलूँगा। अभी तक मैं मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार आवश्यकता एवं औचित्य के अनुसार ऋतं=पारमार्थिक सत्य (च)=एवं सत्यं=व्यावहारिक सत्य को ही अवादिषं=बोला हूँ। तात्पर्य यह है कि मेरी सत्य को ही बोलने की प्रतिज्ञा है; उसे मैं अभी तक पालन किया हूँ और आगे भी पालन करने का सभी प्रयत्न करूँगा॥

ब्रह्म एव=ब्रह्म ही नित्यं=हमेशा मां=मेरी आवीत्=रक्षा की है च=एवं तथा=इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरुदेव की भी (आवीत्)=रक्षा की है—यह मेरा विश्वास है। इसी प्रकार आगे भी वह ब्रह्म=ब्रह्म नित्यं=हमेशा मां=मेरी अवतु=रक्षा करें च=एवं तथा=इसी प्रकार वक्तारं=शास्त्र के उपदेष्टा गुरुं (अपि)=गुरुदेव की भी (अवतु)=रक्षा करें।

ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः—इसकी व्याख्या पहले की जैसी ही समझ लेनी चाहिए॥

(४)

ह्रीं-हरिः ॥

सहैवावतु नौ ब्रह्म सहैवैवं भुनक्तु च ।

भवावः सह सद्वीर्यौ तथा तेजस्विनौ सह ॥
आवां द्विष्वो मिथो नैव आवां द्विष्वो मिथो न हि ।
ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः=समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या रूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्म हरि को हम नमस्कार करते हैं—हम अपने सांसारिक क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए उनके शरण में जाते हैं। वह ब्रह्म=ब्रह्म नौ=हम गुरु एवं शिष्य—दोनों की सह एव=एक साथ ही अवतु=रक्षा करें च=तथा एवं=इसी प्रकार (नौ)=हम-गुरु एवं शिष्य—दोनों को सह एव=एक साथ ही भुनक्तु=पालन-पोषण करें। (नौ)=हम-गुरु एवं शिष्य—दोनों भी सह (एव)=एक साथ ही सद्वीर्यौ=ब्रह्म विद्या जन्य संसारबन्धन के नाश करने में समर्थ वीर्य अर्थात् सामर्थ्य से युक्त भवावः=होवें; तथा=और इसी प्रकार हम दोनों भी सह (एव)=एक साथ ही तेजस्विनौ=प्रकाशवान् अर्थात् संसार बन्धन से मुक्त स्वरूपस्थ भवावः=होवें। आवां=हम-गुरु एवं शिष्य—दोनों भी मिथः=परस्पर न एव द्विष्वः=द्वेष नहीं ही करें। आवां=हम-गुरु एवं शिष्य—दोनों भी मिथः=परस्पर हि=निश्चय ही—अवश्य ही न द्विष्वः=द्वेष न करें ॥

ह्रीं (नमः)=हे ह्रीङ्कारवाच्य परब्रह्मन् ! आपको नमस्कार ! आपकी कृपा से—(मम)=मेरे (आध्यत्मिकानां तापानां)=आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुःखों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। (मम)=मेरे (आधिभौतिकानां तापानां)=आधिभौतिक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। एवं (मम)=मेरे (आधिदैविकानां तापानां)=

आधिदैविक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय ॥

(५)

ह्रीं हरिः ॥

भद्रं हि पश्येम सदक्षजातै-

र्देहैः सुपुष्टैः करवाम भद्रम् ।

ध्यायेम भद्रं हि सुशान्तचित्तै-

र्भद्रे रताः स्याम हि यावदायुः ॥

ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ह्रीं हरिः=समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या रूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्म हरि को हम नमस्कार करते हैं—हम अपने सांसारिक क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए उनके शरण में जाते हैं। उनकी कृपा से (वयं)=हम (सदा)=हमेशा सदक्षजातैः=समर्थ इन्द्रियों से भद्रं हि=कल्याण या श्रेय साधनों को ही पश्येम=देखें। तात्पर्य यह है कि हमारे सभी ज्ञानेन्द्रियाँ समर्थ हों एवं हम उनसे कल्याण अर्थात् परम श्रेय के साधनों को ही ग्रहण करें—पतन के साधनों को ग्रहण न करें। तथा (वयं)=हम सुपुष्टैः देहैः=अच्छी तरह पुष्ट—दृढ़ शरीरों से भद्रं (एव)=कल्याण या श्रेय साधन कर्मों को ही करवाम=करें। तात्पर्य यह है कि हमारे शरीर हृष्ट-पुष्ट हों एवं कर्मेन्द्रियाँ बलवान् हों तथा हम उनसे कल्याण अर्थात् परमश्रेय के साधनीभूत कर्मों को ही करें। तथा (वयं)=हम सुशान्तचित्तैः=अपने अच्छी तरह शान्त हुए-रहे

वाले चित्त अर्थात् अन्तःकरणों से भद्रं हि=कल्याण अर्थात् परमश्रेयस्वरूप परब्रह्म एवं उनके प्राप्ति के साधनों का ही ध्यायेम=ध्यान करें। (एवं)=इसी प्रकार—काया वाचा एवं मनसा (वयं)=हम यावदायुः=आयुष्य की—जीवन की समाप्ति पर्यन्त अर्थात् इस जीवन के अन्तिम श्वास पर्यन्त भद्रे हि=कल्याण—परमश्रेय परब्रह्म एवं उनकी प्राप्ति के साधनों में ही रताः स्याम=रमण करते रहें—निरत रहें—तत्पर रहें। तात्पर्य यह है कि हमारे आयुष्य अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षण परमश्रेय की प्राप्ति में ही उपयुक्त हो जाय॥

ह्रीं (नमः) = हे ह्रीङ्कारलक्ष्य परब्रह्मन्! आपको नमस्कार! आपकी कृपा से (मम)=मेरे (आध्यात्मिकानां तापानां) =आध्यात्मिक ताप अर्थात् तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। (मम)=मेरे (अधिभौतिकानां तापानां)= आधिभौतिक तापों की शान्तिः (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय। एवं (मम)=मेरे (आधिदैविकानां तापानां)=आधिदैविक तापों की शान्ति (अस्तु)=शान्ति अर्थात् नाश हो जाय॥

(६)

ह्रीं हरिः।

ब्रह्म पूर्णं जगत् पूर्णं पूर्णो पूर्णं प्रतीयते।

पूर्णस्यादाय पूर्णत्वं पूर्णमेकं हि शिष्यते॥

ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

हरिः=संसार के मूलकारण अविद्यारूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीं=हे ह्रीङ्काररूप परब्रह्मन्। (तुभ्यं वयं नुमः)= आप को हम नमस्कार करते हैं॥

ब्रह्म पूर्णं (वर्तते)=ब्रह्म पूर्ण है। (एतद्) जगत् (अपि)=यह जगत् भी (स्वरूपतः) पूर्णं (एव वर्तते)=स्वरूपतः पूर्ण ही है। (यतः)=क्योंकि (अज्ञानात् हेतोः)=परमात्मतत्व के अज्ञान के कारण पूर्णे (ब्रह्मणि)=पूर्ण ब्रह्म में पूर्णं (जगत्)=स्वरूपतः पूर्ण रहनेवाला जगत् प्रतीयते=प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई देता है। (अतः)= इसलिए पूर्णस्य (जगतः)=पूर्ण जगत् का पूर्णत्वं आदाय=पूर्णत्व को ग्रहण कर लेने पर—जान लेने पर एकं पूर्णं हि=एक अखण्ड पूर्ण परब्रह्म ही शिष्यते=बच जाता है—अनुभव में आता है॥

ह्रीं=हे ह्रीङ्कारस्वरूप परब्रह्मन्! (नः आध्यात्मिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुखों का नाश हो जाय। (नः आधिभौतिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)= हमारे आधिभौतिक तापों का नाश हो जाय। एवं (नः आधिदैविकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आधिदैविक तापों का नाश हो जाय। तात्पर्य यह है कि हमारे त्रिविध तापों का नाश हो जाय।

—❀—

॥ अनध्यायः ॥

प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या एवं पूर्णिमा— इन तिथियों को नियमतः वेदान्तानुशासन का अनध्याय होता है अर्थात् इन तिथियों में वेदान्तानुशासन का विधिवत् अध्ययन एवं अध्यापन नहीं किया जाता है। सङ्क्रान्ति, युगादि, ग्रहण आदि पर्व एवं उत्सव के दिनों में भी वेदान्तानुशासन का अनध्याय होता है। तूफान, भूकम्प, अधिक वर्षा, सामाजिक घटनाएँ, किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के आगमन या मरण, आदि से वातावरण के अशान्त रहने पर उस दिन भी अनध्याय मानना चाहिए। स्त्रीयों को रजोदर्शन से (रजोदर्शन के दिन को लेकर)

चार दिन तक अनध्याय होता है। वृद्धि या मृत सूतक में भी अनध्याय होता है। हाँ, अनध्याय के दिन में भी मुमुक्षुओं को स्वयं वेदान्तानुशासन का अनुसन्धान करने में कोई निषेध नहीं है। मुमुक्षुओं को चाहिए यह कि "आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्त-चिन्तया"=जब तक निद्रा नहीं आ जाती है एवं जब तक मृत्यु ग्रस नहीं लेती है, तब तक सावधान होकर वेदान्तानुशासन के चिन्तन में समय व्यतीत करना चाहिए। सूतक एवं स्त्रीयों के रजोदर्शन के दिनों में स्वयं वेदान्तानुशासन का पुस्तक का अध्ययन करना निषिद्ध है। हाँ, ऐसी समय में भी यदि दूसरे कोई विधिवत् वेदान्तानुशासन का श्रवण कर रहे हों तो दूर में बैठ कर सुनने में कोई दोष नहीं है।

अनध्याय के एक दिन पूर्व ही हो या अनध्याय के दिन ही हो, गुरु एवं शिष्य दोनों को भी अनध्यायनिनित्तक निम्न-लिखित मङ्गलाचरण कर्तव्य है। सूतक में एवं स्त्रीरजोदर्शन में यह मङ्गलाचरण नहीं किया जाता है।

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम् ॥१॥
अतिकल्याणरूपत्त्वात् नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्त्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः ॥२॥
हकारः परमं ब्रह्म रीमिति मायिकं जगत्।
सर्वात्मकं भवेत्तस्मात् "ह्रीम्" इति ब्राह्ममक्षरम् ॥३॥
ह्रीं तत्सत्परब्रह्मणे नमः ॥४॥

—❀—

॥ ह्रीं तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमदीश्वराश्रमस्वामिप्रणीतम्

॥ ईशावास्यानुशासनम् ॥

(तत्प्रणीतयैश्वर्याख्यया लघुभाषाव्याख्यया समलङ्कृतम्)

—*—
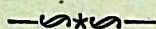
सच्चिदानन्दमीशानं विश्वव्यापिनमव्ययम् ।
चराचरेषु भूतेषु तिष्ठन्तं प्रणमाम्यहम् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ह्रीं हरिः ॥

ब्रह्म पूर्णं जगत् पूर्णं पूर्णे पूर्णं प्रतीयते ।
पूर्णस्यादाय पूर्णत्वं पूर्णमेकं हि शिष्यते ॥

ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हरिः=संसार के मूलकारण अविद्यारूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीं=हे ह्रीङ्काररूप परब्रह्मन् । (तुभ्यं वयं नुमः)= आप को हम नमस्कार करते हैं ॥

ब्रह्म पूर्णं (वर्तते)=ब्रह्मपूर्ण है । (एतद्) जगत् (अपि)=यह जगत् भी (स्वरूपतः) पूर्णं (एव वर्तते)=स्वरूपतः पूर्ण ही है। (यतः)=क्योंकि (अज्ञानात् हेतोः)=परमात्मतत्व के अज्ञान के कारण पूर्णे (ब्रह्मणि)=पूर्ण ब्रह्म में पूर्णं (जगत्)=स्वरूपतः पूर्ण

रहनेवाला जगत् प्रतीयते=प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई देता है। (अतः)=इसलिए पूर्णस्य (जगतः)=पूर्ण जगत् का पूर्णत्वं आदाय=पूर्णत्त्व को ग्रहण कर लेने पर—जान लेने पर एकं पूर्णं हि=एक अखण्ड पूर्ण परब्रह्म ही शिष्यते=बच जाता है—अनुभव में आता है ॥

ह्रीं=हे ह्रीङ्कारस्वरूप परब्रह्मन्! (नः आध्यात्मिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुखों का नाश हो जाय। (नः आधिभौतिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आधिभौतिक तापों का नाश हो जाय। एवं (नः आधिदैविकानां तापाना) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आधिदैविक तापों का नाश हो जाय। तात्पर्य यह है कि हमारे त्रिविध तापों का नाश हो जाय।

॥ अनुवन्धचतुष्टयनिरूपण ॥

सर्वप्रथम प्रारम्भ किये जाने वाले वेदान्तानुशासन में विचारवानों की प्रवृत्ति की सिद्धि के लिए अधिकारी, अभिधेय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन रूप अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण कर रहे हैं कि—

अथातो वेदान्तानुशासनम्।

अतः=दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति रूप परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का एक मात्र साधन वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान ही है। किन्तु वेदान्त के विधिवत् श्रवण एवं अध्ययन करने के लिए केवल द्विजाति पुरुष ही अधिकारी माने गये हैं। "स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा" इत्यादि शास्त्रवचनों के अनुसार स्त्री, शूद्र एवं संस्कारहीन या पतित द्विजातियों को वेदवेदान्तों के श्रवण एवं अध्ययन में

अधिकार नहीं है। तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि इन स्त्री, द्विजेतर पुरुष, संस्कारहीन या पतित द्विजाति पुरुषों में परमपुरुषार्थ के परमसाधन वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान की जिज्ञासा नहीं होती है। परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का प्रधान साधन होने के कारण उनमें भी वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान की जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। जब उनमें यह जिज्ञासा उत्कट हो जाती है तब वे शास्त्रों के इन निषेध वाक्यों की उपेक्षा करके भी वेदान्त के अध्ययन एवं श्रवण में प्रवृत्त हो जाते हैं। बहुत से दयालु गुरुजन भी शास्त्र की मर्यादा की उपेक्षा या उल्लङ्घन कर के भी उनको वेदान्त का अध्यापन कर भी लेते हैं। किन्तु इस प्रकार की शास्त्रमर्यादा की उपेक्षा या उल्लङ्घन शास्त्रोपदिष्ट परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए सहायक नहीं बन सकता है, अतः उचित नहीं है। परमपुरुषार्थ मोक्ष तो जीव मात्र का अभीष्ट है एवं मनुष्य मात्र को चाहिए कि वह परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए यथासम्भव प्रयत्न करें। परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का हेतु केवल वेदान्तप्रतिपाद्य परतत्त्व का यथार्थ ज्ञान ही होने के कारण सभी को विधिवत् वेदान्तवेद्य परतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। वेदाध्ययन के अनधिकारियों को भी शास्त्रसम्मत विधि से वेदान्त प्रतिपाद्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्मतत्त्व का ज्ञान सुलभ हो जाय इस उद्देश्य से, अथ=साधक में वेदान्तप्रतिपाद्य परब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार के लिए आवश्यक विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति; तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान रूप षट्सम्पत्ती एवं मुमुक्षुता रूप साधनचतुष्टय की सम्प्राप्ति के अनन्तर वेदान्तानुशासनं=वेदान्त अर्थात् उपनिषदों का अनुशासन अर्थात् पनः उपदेश (प्रवर्तते, क्रियते वा)=प्रारम्भ किया जा रहा है—दिया जा रहा है॥

अनुबन्धचतुष्टय का संक्षेपतः निरूपण करते हुए सामान्यतः वेदान्तानुशासन की प्रतिज्ञा की गई। अब प्रकृत ईशावास्यानुशासन की प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि—

तत्रादावीशावास्यानुशासनम् ।

तत्र=उन वेदान्तों के—उपनिषदों के अनुशासनों में आदौ=पहले ईशावास्यानुशासनं=ईशावास्योपनिषद् का अनुशासन अर्थात् पुनः उपदेश (प्रवर्तते, क्रियते वा) प्रारम्भ किया जा रहा है—दिया जा रहा है ॥

(१)

(मुमुक्षुओं के लिए परमार्थ का उपदेश)

परमार्थ सत्य पदार्थ एकमात्र वेदान्तप्रतिपाद्य परब्रह्म ही है। यह सम्पूर्ण जगत् उस परब्रह्म में रज्जु-सर्प के समान कल्पित एवं मिथ्या ही है। परमपुरुषार्थ के जिज्ञासु मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे इस कल्पित जगत् को त्याग करके सम्पूर्ण जगत् में परमार्थ सत्य पदार्थ परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का दर्शन करते हुए परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर को तादात्म्यभाव से प्राप्त करके कृतार्थ हो जाय। परमार्थ के जिज्ञासु मुमुक्षुओं को। अब यही परमार्थोपदेश दिया जा रहा है कि—

ईशावास्यमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तेन त्यक्तेन वै भुञ्ज्यात् नैव काङ्क्षेद्धनं क्वचित् ॥१॥

इदं सर्वं स्थावरजङ्गमं जगत्=यह सभी स्थावरजङ्गमात्मक अर्थात् चर एवं अचर जगत् ईशा=ईश्वर के द्वारा—ब्रह्मा जी से लेकर पिपीलिका पर्यन्त सभी के अन्तर्यामी रूप में स्थित

सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा के द्वारा वास्यं=आच्छादन करने योग्य है। तात्पर्य यह है कि इस नामरूपात्मक जगत् को सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वरमय अनुभव करना चाहिए। (एवं ईश्वर दर्शनेन)=इस प्रकार ईश्वरदर्शन से त्यक्तेन तेन (जगता) वै=त्यागे हुए उस जगत् से ही (आत्मानं, जगद्वा) भुञ्ज्यात्=अपनी आत्मा की रक्षा कर लें—अथवा इस जगत् का भोग करें॥ क्वचित्=कभी भी, अथवा किसी का भी—चाहे वह अपना ही हो या दूसरे का ही हो, किसी का भी, धनं=धन की न एव काङ्क्षेत्=नहीं ही कामना करें।

परम पुरुषार्थ के जिज्ञासु मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे पुत्र वित्त एवं लोक सम्बन्धी त्रिविध एषणा अर्थात् कामनाओं का त्याग करके नामरूपात्मक इस समस्त जगत् को सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर के रूप में दर्शन करते हुए अपने को इस संसार सागर में से उद्धत कर लें एवं परमानन्द-स्वरूप परमात्मा परमेश्वर के साक्षात्काररूप मोक्षफल का भोग करें॥ १॥

(२)

(बुभुक्षुओं के लिए कर्म का उपदेश)

अनात्मविषयों में आसक्त रहने के कारण जो पुरुष प्रथम मन्त्र में उपदिष्ट त्रिविध एषणाओं के त्याग पूर्वक सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करनीरूप परमार्थ साधना के लिए अधिकारी नहीं है, उनके लिए अब यहाँ कर्म का उपदेश दिया जा रहा है कि—

जिजीविषा मनुष्ये चेत् कुर्वन् कर्म जिजीविषेत्।
अयमेकः परः पन्था येन कर्म न लिम्पति॥२॥

मनुष्ये=मनुष्य में जिजीविषा=जीने की इच्छा चेत् (अस्ति)=यदि है, (तर्हि)=तो (सः) कर्म कुर्वन् (एव)=वह शास्त्र-विहित सत्कर्मों को करते ही जिजीविषेत्=जीना चाहे। अयं (एव)=यही एकः (एव)=एकमात्र परः पन्थाः=उत्कृष्ट या निरापद या निश्चित मार्ग है, येन=जिस मार्ग में चलने से तं=उस जीने की इच्छा रखने वाले पुरुष को कर्म=अशुभ कर्म न लिम्पति =लिप्त नहीं होते हैं ॥

अनात्मविषयों में समासक्त पुरुष जो विषयों को भोगना चाहता है एवं जिसमें अभी तक मोक्ष की प्रति उत्कट इच्छा जागृत नहीं हुई हैं, उसे शास्त्रविहित कर्मों के करते ही जीना चाहिए अर्थात् विषयोपभोग करना चाहिए, क्योंकि—कर्म स्व-भावतः बन्धन का हेतु होने के कारण उन कर्मों से कर्ता लिप्त होगा ही—उसे उन कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। ईश्वरार्पण बुद्धि से हो या कर्तव्यत्व बुद्धि से ही हो, शास्त्रविहित कर्मों के करते रहने पर स्वभावतः बन्धन के हेतुभूत कर्म भी अपने बन्धक गुणों से रहित हो जाते हैं एवं चित्तशुद्धि द्वारा परम-पुरुषार्थ मोक्ष की इच्छा को उत्पन्न करने में साधन बनते हैं। अतः विषयासक्त बुभुक्षु पुरुष को शास्तविहित कर्मों को करते ही विषयोपभोग करना चाहिए ॥ २ ॥

(३)

(अज्ञानी की निन्दा)

प्रथम मन्त्र में उक्त ईश्वरात्मदर्शन की स्तुति करने के लिए अब द्वितीय मन्त्र में उक्त कर्मनिष्ठा एवं स्वाभाविक विषयासक्ति की निन्दा की जा रही है कि—

असुर्या नाम ये लोकास्तेऽन्धेन तमसाऽऽवृताः ।

लोकांस्तान् प्रेत्य गच्छन्ति सर्वे ह्यात्महनो जनाः ॥३॥

ये=जो असुर्या=असर्या नाम के अथवा विषयासक्त असुरों के सम्बन्धी नाम=प्रसिद्ध लोका: (सन्ति)=लोक हैं, ते=वे अन्धेन=अदर्शनात्मक अर्थात् विमोहक तमसा=अज्ञान से आवृता: (सन्ति)=आच्छादित हैं। तान् लोकान्=उन असुर-सम्बन्धी लोकों को सर्वे हि=सभी आत्महनो जना:=आत्मा का हनन करनेवाले लोग अर्थात् आत्मा की उपेक्षा करनेवाले लोग प्रेत्य=मरने के बाद गच्छन्ति=जाते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं।

आत्मा की उपेक्षा करने पर पुरुष अर्थात् जीव को असुर अर्थात् विषयासक्त पुरुषों के द्वारा भोग्य चौरासी लाख योनियों में नानाविध क्लेशों को भोगते हुए भटकना पड़ता है। अतः विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा की उपेक्षा न करते हुए आत्मसाक्षात्कार के लिए यथा अधिकार प्रयत्न करें। यदि पुरुष विषयासक्त हो तो ईश्वरार्पण बुद्धि से या कर्तव्यत्व बुद्धि से शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान के द्वारा अन्तःकरण के राग-द्वेषादि रूप मल का नाश करने का प्रयत्न करे एवं विमलान्तः-करण पुरुष पुत्र वित्त एवं लोक विषयक एषणा अर्थात् कामनाओं को त्याग कर सर्वकर्मसन्यासपूर्वक समस्त चराचर विश्व को परब्रह्ममय देखते हुए परमात्मसाक्षात्कार के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें ॥३॥

(४)

(आत्मा का स्वरूप निरूपण)

जिस आत्मा की उपेक्षा करने से पुरुष अर्थात् जीव को

संसार में नानाविध क्लेशों को भोगना पड़ता है एवं जिस आत्मा के ज्ञान से विवेकी पुरुष मुक्त हो जाते हैं एवं परमोत्कृष्ट ब्रह्मानन्द को भोगते हैं; उस आत्मा के स्वरूप का अब निरूपण किया जा रहा है कि—

नैजत्यथैको मनसो जवीयो
नैनं विदन्त्यग्रगतिं हि देवाः ।
अत्येति सर्वांश्चलतः स तिष्ठन्
तस्मिंश्च ब्रह्मा विदधाति कर्म ॥४॥

(सः आत्मा ईश्वरः)=वह आत्मा अर्थात् ईश्वर न एजति= काँपता नहीं, अर्थात् निष्क्रिय है—अचल है; अथ=एवं एकः= एक है—ब्रह्माजी से लेकर तिनके पर्यन्त सभी भूतों में एकस्वरूप से अनुस्यूत है; (सः व्यापकत्त्वात्) वह आत्मा व्यापक होने के कारण मनसः (अपि) जवीयः (इव) मन से भी मानों वेगवान् है; अर्थात् जहाँ जहाँ सबसे वेगवान् मन जाता है, वहाँ वहाँ यह आत्मा पहले ही पहुंचे हुए के जैसा मौजूद पाया जाता है; एनं अग्रगतिं= सभी ब्रह्मादि देवेश्वरों के भी पूर्वज इस परमात्मा को देवाः (अपि)=ब्रह्मा आदि देवता भी न हि विदन्ति=नहीं ही जान पाते हैं; तस्मिन् (सर्वाधिष्ठाने आत्मनि सति)=वह सर्वाधिष्ठान आत्मा के स्थित रहते हुए अर्थात् उसकी सन्निधि में ही ब्रह्मा= हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जी (सर्वं) कर्म=सभी कर्मों का विदधाति= विधान करते हैं ॥

मन एवं वाणी के अविषय एवं समस्त जगत् के मूल कारण होने के कारण ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी अत्यन्त दुर्ज्ञेय, सर्वदा एक रूप में रहनेवाला सर्वव्यापक निष्क्रिय

आत्मतत्त्व ही स्वयं अकर्ता एवं अभोक्ता होते हुए भी समस्त जगत् के सभी कर्मों के कर्ता हैं। अतः साधक इस जगत् में सर्वत्र सभी क्रियाओं में ईश्वरेच्छा एवं ईश्वरशक्ति का दर्शन करें ॥

(५)

(आत्मा की व्यापकता का निरूपण)

प्रथम मन्त्र में सम्पूर्ण जगत् को ईश्वरमय अनुभव करने के लिए आदेश दिया गया है। अब उसका कारण सभी चर एवं अचर भूतों के रूप में परमात्मा का स्थित रहना ही बताया जा रहा है कि—

आत्मैव गच्छत्यथ तिष्ठतीह
आत्मैव दूरे पुनरन्तिके च।
आत्मैव चान्तर्निखिलस्य लोके
आत्मैव बाह्ये पुनरस्य नित्यम् ॥५॥

इह=इस जगत् में आत्मा एव=आत्मा ही गच्छति=चलता है, अथ=और (आत्मा एव)=आत्मा ही तिष्ठति=बैठा रहता है—स्थिर रहता है; आत्मा एव=आत्मा ही दूरे (वर्तते)=दूर में स्थित है, च पुन:=और पुनः (आत्मा एव)=आत्मा ही अन्तिके (अपि वर्तते)=समीप भी स्थित है; च=और लोके=इस लोक में आत्मा एव=आत्मा ही निखिलस्य अन्तर् (वर्तते)=सभी भूतों के अन्दर रहता है, (एवं) पुन:=एवं पुनः आत्मा एव=आत्मा ही नित्यं (एव)=हमेशा ही अस्य (भूतस्य)=इन भूतों के बाह्य (अपि)=बाहर भी (वर्तते)=स्थित रहता है जगत् के सभी चर

एवं अचर, समीप स्थित एवं दूरस्थित तथा अन्दर स्थित एवं बाह्यस्थित सभी पदार्थ यथार्थतः परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर ही हैं। जिस प्रकार सभी मृन्मय (मिट्टी से बनाये गये) पदार्थों में मृत्तिका व्याप्त रूप में रहती है, उसी प्रकार सभी चर एवं अचर जगत् में कारण ब्रह्म एक रूप से अनुस्यूत रहता ही है। अतः जगत् के सभी पदार्थों को परब्रह्मपरमात्मपरमेश्वरमय अनुभव करना चाहिए।

इस मन्त्र की व्याख्या परमेश्वर की अचिन्त्य माया शक्ति के विलास के प्रतिपादक के रूप में भी कर सकते हैं। तद्यथा—

इह=इस जगत् में आत्मा एव=आत्मा ही गच्छति (इव प्रतीयते)=चलते जैसा प्रतीत होता है; (किंतु परमार्थतः)=किन्तु वास्तव में अर्थात् अपने स्वरूप से (आत्मा)=आत्मा तिष्ठति (एव) =स्थिर ही रहता है। आत्मा एव=आत्मा ही दूरे (इव प्रतीयते) =दूर में स्थित जैसा प्रतीत होता है पुनः च=फिर भी (स आत्मा) =वह आत्मा (स्वरूपतः)=अपने स्वरूप से अन्तिके (एव वर्तते)= अत्यन्त समीप ही प्रत्यगात्मा के रूप में स्थित रहता है। च= और आत्मा एव=आत्मा ही (व्यापकत्वात्)=व्यापक होने के कारण (अस्मिन्) लोके=इस लोक में—जगत् में निखिलस्य (चराचरस्य भूतजातस्य) सभी स्थावर-जङ्गम भूतों के अंतर् (वर्तते)= अन्दर रहता है, पुनः=और आत्मा एव=आत्मा ही (सर्वस्य चराचरस्य भूतजातस्य) इस चर एवं अचर भूतों के बाह्ये (अपि वर्तते)= बाहर भी रहता है।

आत्मा अपने निरुपाधिक परमार्थ स्वरूप से निष्क्रिय एवं अचल रहते हुए भी मायिक उपाधि के अनुसरण करने के कारण माया से विमोहित दृष्टिवाले पुरुषों को चलता सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार अज्ञानियों की दृष्टि से दूर रहने पर भी आत्म-

ज्ञानियों की दृष्टि से अत्यन्त सन्निकृष्ट प्रत्यगात्मा ही है। सर्व व्यापक होने के कारण सभी के अन्दर एवं बाहर निरन्तर व्याप्त है। साधक को यह समझना चाहिए कि ये बाह्य सभी विक्रियाएँ, दूरत्व समीपत्त्व आदि सभी भेद अविद्या के कारण ही कल्पित एवं मिथ्या ही हैं। वास्तव में तो परमार्थ सत्य निष्क्रिय, सर्व-व्यापक अद्वैत प्रत्यगात्मा परमात्मतत्त्व ही है ॥ ५ ॥

(६)

(आसक्ति त्याग का उपाय अभेद दर्शन का निरूपण)

प्रथम मन्त्र में यह बताया गया है कि समस्त चर एवं अचर जगत् के त्याग पूर्वक ही मनुष्य को जगत् का भोग करना चाहिए एवं अपनी रक्षा कर लेनी चाहिए। जब तक मनुष्य को इस जगत् में आसक्ति रहेगी तब तक इस जगत् का त्याग सम्भव नहीं है। अतः जगत् में जो अज्ञ लोगों की आसक्ति है, उस आसक्ति का नाश करने के लिए उपाय रूप में अभेद दर्शन का निरूपण किया जा रहा है कि—

सर्वाण्यपि च भूतानि कल्पितानि परात्मनि ।
तदात्मा सर्वभूतेषु पश्यन्नेवं न सज्जते ॥६॥

सर्वाणि अपि च भूतानि=ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका पर्यन्त सभी भूत भी (आत्माज्ञानेन हेतोः)=परमात्मा को न जानने के कारण परात्मनि=परमात्मा में कल्पितानि (एव सन्ति)=कल्पित ही हैं। तत्=अतः सर्वभूतेषु=ब्रह्मा से लेकर तिनके पर्यन्त समस्त भूतों मे (अधिष्ठानरूपेण)=अधिष्ठान के रूप में आत्मा (एव)=आत्मा ही (वर्तते)=है। एवं=इस प्रकार पश्यन्=देखते हुए—अनुभव करते हुए (नरः)=मनुष्य (मिथ्याभूते जगति)=मिथ्या रूप

जगत् में न सज्जते=आसक्त नहीं होता है अर्थात् राग द्वेष आदि से युक्त नहीं होता है।

जगत् को जब तक हम सत्य समझते हैं तभी तक हमें उसमें आसक्ति होना सम्भव है। जगत् को मिथ्या समझ लेने पर उससें आसक्ति होना सम्भव नहीं है। राग द्वेष आदि भी अनात्म वस्तुओं में ही होते हैं, न कि आत्मा में। अतः जब तक जगत् को अनात्मा समझ लेते हैं तब तक जगद्विषयक राग द्वेष आदि हो सकेंगे, किन्तु जब हम जगत् को स्वरूतः परमात्मा ही समझ लेते हैं तब जगद्विषयक राग द्वेष आदि सम्भव नहीं हैं। अतः एव समस्त जगत् को अज्ञान के कारण आत्मा में कल्पित एवं मिथ्या तथा वास्तव में जगत् में भी जगद्रूप कल्पना का अधिष्ठान अपने प्रत्यगात्म स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही परमार्थ सत्य पदार्थ है समझ लेने पर जगत् में आसक्ति एवं राग द्वेष आदि दोष अपने आप नष्ट हो जाते हैं और अनायास वह पुरुष जगत् के त्याग पूर्वक जगत् को भोग सकता है और अपनी आत्मा की रक्षा कर सकता है। इससे अतिरिक्त आसक्ति, राग द्वेषादि को जीतने का कोई अन्य सरल उपाय ही नहीं है। अतः अभेदात्मदर्शन के लिए श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए॥ ६॥

(७)

(अभेद दर्शन से परमपुरुषार्थ की प्राप्ति का निरूपण)

इससे पूर्व मन्त्र में यह बताया गया है कि सम्पूर्ण जगत् में अधिष्ठान के रूप में अपनी ही आत्मा को, एवं परमार्थ सत्य पदार्थ अपनी ही आत्मा में सम्पूर्ण जगत् को अध्यस्त अर्थात् कल्पित समझकर, उभयत्र एक अभिन्न—अद्वैत परमात्मतत्त्व का

दर्शन करने से पुरुष के जगद्विषयक आसक्ति—राग द्वेष आदि दोष नष्ट हो जाते हैं एवं वह जगत् के त्याग पूर्वक इस क्लेशद संसारसागर में पड़े हुये अपने को उद्धत करने में प्रयत्न कर सकता है। अब यह बताया जा रहा है कि अभेद दर्शन न केवल आसक्ति—राग, द्वेष आदि दोषों का नाश करने के लिए एक समर्थ साधन है किन्तु सांसारिक दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति रूप परमपुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए भी एकमात्र अमोघ साधन है—

यस्मिन् खल्वखिलं विश्वं आत्मैवेत्यनुभूयते।

शोकमोहौ कुतस्तस्मिन् एकत्त्वमनुपश्यति ॥७॥

यस्मिन्=जिस समय, या जिस साधक में खलु=निश्चय ही अखिलं विश्वं=ब्रह्मा से लेकर तिनके पर्यन्त समस्त विश्व अर्थात् जगत् आत्मा एव इति=ये सभी भूत स्वरूपतः आत्मा ही हैं—कहकर अनुभूयते=अनुभव किया जाता है तस्मिन्=उस समय में एकत्त्वमनुपश्यति=एकत्त्व को अनुभव करनेवाले (तस्मिन्)= उस साधक में शोकमोहौ=शोक एवं मोह कुतः=कैसे सम्भव है, अर्थात् किसी भी हाल में सम्भव नहीं है ॥

इष्ट के वियोग एवं अनिष्ट के संयोग के निमित्त अन्तःकरण के दुःखाकार वृत्ति विशेष को ही शोक कहते हैं। इस शोक का कारण अनात्म पदार्थों में आत्मत्त्व बुद्धि एवं आत्मा में अनात्मत्त्व बुद्धि ही है। यही मोह है। ये शोक एवं मोह—दोनों भी ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान के अभाव में अद्वैत आत्मा के अज्ञान के कारण ही होते हैं। जिस पुरुष में अद्वैत परमात्मा का साक्षात् अनुभव हो रहा है वहाँ अद्वैतात्मविषयक अज्ञान के नाश हो जाने के कारण अज्ञान के कार्य शोक एवं मोह का भी समूल नाश हो ही जाता है। तात्पर्य यह है कि अद्वैतात्मविज्ञान से संसार एवं

सांसारिक दुखों का समूल नाश हो जाता है। अतः हमें सादर अद्वैतात्मदर्शन के लिये प्रयत्न करना चाहिए॥ ७॥

(८)

(आत्मस्वरूप का निरूपण)

पूर्व मन्त्र में यह बताया गया है कि चराचरात्मक समस्त जगत् में एक रूप से अनुस्यूत परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर को जाननेवाले पुरुष शोक मोहात्मक इस संसार से हमेशा के लिये मुक्त हो जाते हैं। अब यह बताया जा रहा है कि वे पुरुष परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर को चराचरात्मक इस समस्त जगत् में किस स्वरूप में पहचानते हैं, किस स्वरूप में देखते हैं एवं किस रूप में अनुभव करते हैं—

स परिगतवानात्मा शुक्रोऽकायोऽव्रणस्तथा।
अस्नायुश्च विशुद्धश्च अपापविद्ध एव च॥
कविश्चापि मनीषी च स्वयम्भूः परिभूरपि।
स एवार्थान् यथायोग्यं प्रजेभ्यो व्यदधाद्विभुः॥८॥

सः आत्मा=वह आत्मा परिगतवान्=सर्वगत है, शुक्रः= ज्योतिष्मान् अर्थात् तेजोमय है, अकायः=शरीर से रहित— अशरीरी है, तथा अव्रणः=तथा अक्षत अर्थात् घाव—छिद्र या छेद से रहित है, अस्नायुः च=तथा स्नायुओं से रहित है, विशुद्धः च=तथा अत्यन्त शुद्ध है, अर्थात् राग द्वेष आदि मल—दोषों से रहित है, अथवा अविद्या रूप मल—दोष से रहित है, च=एवं अपापविद्धः एव=धर्म एवं अधर्म रूप पापों से असंस्पृष्ट ही है, च

=तथा कविः अपि=सर्वज्ञ भी है, मनीषी च=तथा मन का—अन्तःकरण का नियन्ता है अर्थात् अन्तर्यामी है; स्वयम्भूः=स्वयं सिद्ध है; परिभूः अपि=एवं सर्वोत्कृष्ट है—सर्वेश्वर है। सः विभुः (आत्मा) एव=वह सर्व समर्थ आत्मा ही प्रजेड्भ्यः=प्रजापतियों को–प्रजापतियों में अर्थान्=कर्तव्य कर्म एवं पदार्थों का यथायोग्यं यथा उचित व्यदघात्=विभाजन किया—अर्थात् प्रजापतियों को अपने अपने कर्तव्य कर्मों में नियुक्त किया।

तत्वज्ञानी पुरुष अनुभव करते हैं कि सर्वव्यापक परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर स्थूल सूक्ष्म एवं कारण प्रपञ्च में एकरूप में अनुस्यूत रहता है एवं सभी का अन्दर से ही नियमन करता है—अन्तर्यामी है। वही इस स्थूल सूक्ष्म एवं कारण प्रपञ्च से परे—इसका असङ्ग साक्षी भी है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुष एकमात्र परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर को ही इस समस्त प्रपञ्च के रूप में, इसमें के सभी व्यवहारों का नियामक, कर्ता एवं भोक्ता के रूप में तथा इनसे परे असङ्ग साक्षी के रूप में—सर्वत्र सर्वदा अनुभव करते हुए शोकमोहात्मक संसार बन्धन से हमेशा के लिए मुक्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

(९)

(ज्ञानकर्मसमुच्चायार्थं ज्ञान एवं कर्म की निन्दा)

पूर्व मन्त्रों में विषयों से अनासक्त होकर केवल परम-पुरुषार्थ की ही जिज्ञासा करनेवाले मुमुक्षु रूप मुख्य अधिकारी के लिए पुत्र, वित्त एवं लोक विषयक त्रिविध एषणाओं का त्याग-पूर्वक समस्त जगत् में परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का दर्शन रूप परमार्थ का उपदेश, उसके साधन एवं फल का विशद निरूपण किया गया। जिनमें विषयासक्ति के कारण परमपुरुषार्थभूत

मोक्ष की प्रति उत्कट इच्छा जागृत नहीं हुई है—उन विषयासक्त पुरुषों के लिए पाप कर्म एवं प्रमाद से बचने के लिए तथा चित्त-शुद्धि के लिए शास्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान का उपदेश भी द्वितीय मन्त्र में दिया गया। शास्त्रों में विहित कर्मों के विधिवत् अनुष्ठान करते रहने मात्र से पुरुष क्रियमाण अर्थात् वर्तमान में किये जानेवाले कर्मो से एवं सम्भवित प्रमाद से भले ही लिप्त न हो सकता है, किन्तु संचित एवं आगे किये जानेवाले कर्म के बन्धन से सम्पूर्णतया मुक्त नहीं ही हो सकता हैं। सम्पूर्णतया कर्म के बन्धनों से मुक्ति तो बस केवल ब्रह्मात्मैकत्त्व विज्ञान से ही सम्भव है। इसीलिए विषय में आसक्त होकर हो या शास्त्रों में विहित कर्मों को कर्तव्य बुद्धि से करने में निरत रहकर ही हो जो पुरुष आत्मज्ञान की उपेक्षा करते हैं उनको असुर-सम्बन्धी लोक की प्राप्ति होता है कहकर उनकी निन्दा की गई हैं। अतः जो विषया-सक्त पुरुष शास्त्राज्ञा को मान कर शास्त्रविहित कर्मों का विधिवत् अनुष्ठान करते हैं, उनको भी शास्त्रविहित कर्मानुष्ठान के साथ ही परमपुरुषार्थ के साधनीभूत ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान की प्राप्ति के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। यही अब आगे के तीन मन्त्रों में शास्त्रविहित कर्मों में निरत बुभुक्षु पुरुषों के लिए कर्मानुष्ठान के साथ ब्रह्मात्मैकत्त्वानुसन्धान का विधान किया जा रहा है। उनमें भी विधान करने के लिए अभीसित ज्ञान्कर्मसमुच्चय की सिद्धि के लिए सबसे पहले ज्ञानमार्ग एवं कर्मयोग—इन दोनों में के न्यूनता अर्थात् दोष को दिखा रहे हैं कि—

अन्धं हि ते तमो यन्ति ये त्वविद्यामुपासते।

ततोऽधिकं तमो यन्ति विद्यायामेव ये रताः ॥९॥

ये=जो बुभुक्षु पुरुष तु=शास्त्र के अनभिमत अविद्याम् (केवलां एव) उपासते=केवल अविद्या अर्थात् आत्मा के स्वरूप

को नहीं जाननेवाले पुरुषों के लिए ही शास्त्रों में विहित कर्मों की ही उपासना करते हैं अर्थात् तात्पर्य से अनुष्ठान करते हैं, ते=वे शास्त्र के तात्पर्य को समझने में असमर्थ कर्मठ पुरुष हि=निश्चय ही अन्धं तमः=अदर्शनात्मक अर्थात् विमोहक अविद्या में यन्ति=जाते हैं—प्रवेश करते हैं। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान के लिए प्रयत्न न करते हुए केवल शास्त्रों में विहित कर्मों के अनुष्ठान में ही निरत रहते हैं वे विद्या के बिना अविद्या का नाश सम्भव न होने के कारण इस आविद्यक संसार में ही पड़े रहते हैं। (तथा)=उसी प्रकार ये=जो पुरुष अपनी योग्यता की उत्प्रेक्षा कर लेते हैं अर्थात् जो स्वयं राग द्वेष आदि दोषों से युक्त होने के कारण वास्तव में शास्त्रों में चित्त शुद्धि के लिए विहित कर्मों के अधिकारी होते हुए भी, अपने को सर्वकर्म-सन्यासपूर्वक आत्मज्ञान के लिए अधिकारी समझ लेते हैं और अतएव विद्यायां एव=केवल ब्रह्मात्मैकत्त्व विद्या में ही रताः=रमण करते हैं, अर्थात् अशुद्धान्तःकरण—अनधिकारी होने के कारण ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान को साक्षात् अनुभव नहीं कर पाते हैं, बस ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान के केवल अध्ययन, अध्यापन, प्रवचन आदि में ही अपने चित्त के लौल्य को शान्त कर लेते हैं, न कि ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान के साक्षात्कार के लिए यत्नवान् होते हैं, (ते)=ऐसे वे पुरुष ततः (अपि) अधिकं=उस-केवल कर्म के अनुष्ठान करनेवाले कर्मठ पुरुषों के द्वारा प्राप्य अदर्शनात्मक अविद्या अर्थात् विमोहक संसार से भी अधिक अर्थात् घोर (अन्धं) तमः=अदर्शनात्मक अविद्या अर्थात् विमोहक संसार को यन्ति=जाते हैं—प्रवेश करते हैं। चित्त शुद्धि के लिए शास्त्रों में विहित कर्मों का त्याग कर देने के कारण उनके चित्त की शुद्धि नहीं हो पाती है, एवं चित्तशुद्धि के बिना ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान का साक्षात्कार भी नहीं हो पाता है। इस प्रकार वे कर्म का फल

चित्तशुद्धि एवं ज्ञान का फल ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान का साक्षात्कार-पूर्वक मोक्ष—इन दोनों से भी वञ्चित हो जाते हैं। शास्त्रों में विहित कर्मों के यथावत् अनुष्ठान करनेवाले को कम से कम चित्तशुद्धि रूप फल प्राप्त हो जाता है, किन्तु इन अशुद्धान्तःकरण ज्ञानाभिमानियों को वह भी नहीं हो पाता है। इसीलिए कहा कि वे ब्रह्मविद्या में ऊपर ऊपर से ही रमण करनेवाले पुरुष केवल कर्मों को ही करनेवाले कर्मियों के द्वारा प्राप्य आविद्यक संसार से भी अधिक घोर आविद्यक संसार में प्रवेश करते हैं। तात्पर्य यह है कि अशुद्धान्तःकरण साधक के लिए ब्रह्मविद्या के बिना कर्म एवं चित्तशुद्धि के बिना ब्रह्मविद्या का अभ्यास—परमार्थतः ये दोनों भी व्यर्थ ही हैं; ये दोनों भी उसको संसार रूप बन्धन से मुक्त कराने में असमर्थ ही हैं ॥९॥

(१०)

(ज्ञान एवं कर्म की सफलता का निरूपण)

आविद्यक संसार के हेतु होने के कारण कर्म एवं ब्रह्म-विद्या—इन दोनों की भी उपेक्षणीयता प्राप्त हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों का समुच्चय भी सम्भव नहीं हो सकेगी। अतः अब इन दोनों का समुच्चय कराने की इच्छा से यह दूसरा मन्त्र कर्म एवं ज्ञान—इन दोनों को भी सफल बता रहा है कि—

पृथक्फलमविद्यायाः विद्यायाश्च पृथक्फलम् ।
निश्चित्यैवं हि विद्वांसो नस्तत्त्वं विचचक्षिरे ॥१०॥

अविद्यायाः=अविद्या का अर्थात् केवल शास्त्रों में विहित कर्मों के अनुष्ठान का फलं=फल पृथक् (एव)=ब्रह्मविद्या के फल

से भिन्न ही है। शास्त्रों में विहित कर्मों को कामना से प्रेरित होकर करें तो उन सकाम विहितकर्मानुष्ठान का फल अपनी अपनी कामनाओं पूर्ति एवं निषिद्ध कर्मों में सम्भावित प्रवृत्ति से निवृत्ति है। यदि शास्त्रों में विहित कर्मों को निष्काम भाव से या कर्तव्यत्त्व बुद्धि या असङ्गत्त्व बुद्धि से या ईश्वरार्पण बुद्धि से करें तो उसका फल परमेश्वर की प्रसन्नता एवं अनुग्रह पूर्वक साधक के अन्तःकरण की शुद्धि ही है। च=एवं—इसी प्रकार विद्याया:=ब्रह्म विद्या का फलं=फल पृथक् (एव)=केवल कर्म के फल से भिन्न ही है। ब्रह्म विद्या अर्थात् ब्रह्मात्मैकत्त्व विज्ञान का अभ्यास यदि अशुद्धान्तःकरण में किया जाय तो उसका फल बस परोक्ष शाब्दज्ञान ही रह जायगा। किन्तु यही अभ्यास यदि शुद्धान्तःकरण में विधिवत् किया जाय तो वह ब्रह्मात्मैकत्त्व विज्ञान का साक्षात्कार कराकर साधक के सभी सांसारिक बंधनों का विच्छेद पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप परमपुरुषार्थ मोक्ष का हेतु बन जाता है। यह फल कर्म के फल से पृथक् अर्थात् भिन्न है ही। एवं=इस प्रकार तत्त्वं=कर्म एवं विद्या के फलको निश्चित्य =निश्चय करके अर्थात् निश्चित रूप में विद्वांसः=विद्वान् आचर्यों ने नः=हमें विचचक्षिरे=व्याख्यान किया है। तात्पर्य यह है कि यह हमारी कपोलकल्पना नहीं है किन्तु हमारे आचार्य परम्परा में परम्पराप्राप्त आगम है; अतएव सादर माननीय एवं ग्राह्य है॥ १०॥

(११)

(ज्ञान एवं कर्म का समुच्चय का विधान)

ब्रह्मविद्या अर्थात् ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान शुद्धान्तःकरण में ही उत्पन्न होती है न कि अशुद्धान्तःकरण में। अन्तःकरण की शुद्धि

अनुत्पन्न ब्रह्मविद्या से सम्भव भी नहीं है। अन्तःकरण की शुद्धि तो बस शास्त्रों में विहित कर्मों के निष्काम आदि भाव से किये गये अनुष्ठान से ही सम्भव है। अतः ब्रह्म विद्या अपनी उत्पत्ति के लिए चित्तशुद्धि का प्रधान कारण शास्त्र विहित कर्मों के अनुष्ठान की अपेक्षा करती है। इसी प्रकार कर्म भी परमपुरुषार्थ भूत मोक्ष रूप फल देने में स्वयं असमर्थ होने के कारण परमपुरुषार्थ मोक्ष रूप फल देने के लिए ब्रह्मविद्या की अपेक्षा करता है। अशुद्धान्तः करणवाला मुमुक्षु की भी अपने चित्त की शुद्धि के लिए शास्त्रविहित कर्म एवं परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मविद्या—इन दोनों की आवश्यकता भी है ही। इस प्रकार परस्पराविरुद्ध एवं एक पुरुषार्थ सम्बन्धी होने के कारण परमपुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए कर्म एवं ब्रह्मज्ञान—इन दोनों का समुच्चय उचित ही है। यही अब अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षुओं के लिए ज्ञान एवं कर्म का समुच्चय करने के लिए उपदेश दिया जा रहा है कि—

यस्तु विद्यां तथाऽविद्यां सहैवेहानुतिष्ठति।
मृत्युं सोऽविद्यया तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥११॥

यः तु=जो अशुद्धान्तकरण मुमुक्षु पुरुष शास्त्र के मर्म को न जानने के कारण केवल कर्म या केवल ज्ञान का ही अनुष्ठान करते हैं उनसे भिन्न शास्त्र के मर्म को जाननेवाला जो पुरुष, इह=यहाँ, इस कर्मभूमि में विद्यां=विद्या अर्थात् ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञान तथा=और अविद्यां=शास्त्रविहित कर्मों को सह एव=एक साथ ही अनुतिष्ठति=अनुष्ठान करता है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष अपने चित्त की शुद्धि के लिए शास्त्रों में विहित कर्मों का यथावत् ईश्वरार्पण-बुद्धि से या निष्काम भाव से या कर्तव्यत्त्वबुद्धि से या असङ्गत्त्वबुद्धि से अनुष्ठान करने के साथ

ही मोक्षार्थ विहित ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान का अभ्यास भी करता है, सः=वह ज्ञानकर्मसमुच्चयकारी पुरुष, अविद्यया=उन कर्मों से मृत्युं=मृत्यु को अर्थात् अन्तःकरण के रागद्वेषादि मल–दोषों को तीर्त्वा=तर कर अर्थात् नाश करके, शुद्धान्तःकरण होकर विद्यया=ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान से अमृतत्वं=मृत की अर्थात् सांसारिक दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति से उपलक्षित परमानन्द-प्राप्तिरूप अमृत—मोक्ष को अश्नुते=प्राप्त करता है। अतः अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षुओं को अवश्य ही ज्ञान एवं कर्म—इन दोनों का भी साथ साथ अनुष्ठान करना चाहिए ॥११॥

(१२)

(सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना के समुच्चयार्थ दोनों की निन्दा)

अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु के लिए कर्मानुष्ठान के साथ ब्रह्मविद्या का अभ्यास भी करना चाहिए—यह उपदेश पूर्व मन्त्र में दिया गया। अब यह शङ्का होती है कि—कर्म सगुण ब्रह्म की आराधना है तो ब्रह्मविद्या निर्गुण ब्रह्म की उपासना है। 'सगुण' एवं 'निर्गुण' इन दोनों के परस्पर विरुद्ध होने के कारण सगुणो-पासना रूप कर्म एवं निर्गुणोपासना रूप ब्रह्मविद्या—इन दोनों का भी परस्पर विरुद्ध ही होना चाहिए। ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण–उभयात्मक होना सूर्य के तम एवं प्रकाश–उभयात्मक होने के जैसा ही असम्भव है। परस्पर विरुद्ध होने के कारण इन दोनों का एक साथ अनुष्ठान सम्भव भी नहीं है। सगुण ब्रह्म की उपासना के लिए अज्ञानी को अधिकारी माना जाता है तो निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए तत्त्वज्ञानी को अधिकारी माना जाता है। इसलिए—अधिकारिभेद के कारण भी सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना का समुच्चय सम्भव नहीं सकेगा। ऐसी

परिस्थिति में इन दोनों में अन्यतर (किसी एक) का त्याग कर किसी एक का ग्रहण करना आवश्यक होगा। ऐसी परिस्थिति में परमपुरुषार्थ मोक्ष के साक्षात् साधन होने के कारण ब्रह्मविद्या के विषय निर्गुण ब्रह्म की ही उपासना युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है तो साधक के अशुद्धान्तःकरण होने से निर्गुण ब्रह्म को ग्रहण करने में सामर्थ्य नहीं रहने के कारण अन्तःकरण की शुद्धि के लिए विहित सगुणोपासना का त्याग भी उचित प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार किस का ग्रहण करें एवं किस का त्याग करें कहकर किंकर्तव्यविमूढ जिज्ञासु को सगुण ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म- इन दोनों की भी साथ साथ उपासना करने का उपदेश देने के उद्देश्य से आगे के तीन मन्त्र प्रवृत्त होते हैं। उनमें भी प्रथम मन्त्र विधान करने के लिए अभीप्सित सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना के समुच्चय की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना इन दोनों में के न्यूनता अर्थात् दोष को दिखा रहा है कि—

अन्धं हि ते तमो यन्ति ये सम्भूतिमुपासते।
ततोऽधिकं तमो यन्ति असम्भूत्यां हि ये रताः ॥१२॥

ये=जो शास्त्र के मर्म को समझने में असमर्थ अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु पुरुष सम्भूतिं (केवलां एव) उपासते=केवल सम्भूति की उपासना करते हैं। सम्भूति सम्भवन अर्थात् उत्पत्ति को कहते हैं। किन्तु यहाँ सम्भूति शब्द से सम्भूति अर्थात् उत्पत्ति धर्मवाला पदार्थ अभिप्रेत है। हिरण्यगर्भब्रह्मा जी एवं उनके द्वारा सृष्ट समस्त जगत् के उत्पत्तिशील होने के कारण सम्भूति शब्द से यहाँ ब्रह्मा जी से लेकर तिनके पर्यन्त समस्त जगत् का ग्रहण होता है। साथ ही जिस कारण से इस ब्रह्मादिक समस्त जगत् की सम्भूति अर्थात् उत्पत्ति होती है वह

समस्त जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादान मायोपाधिक परमेश्वर का भी सम्भूति शब्द से ही ग्रहण हो जाता है। परमेश्वर ब्रह्मादिक समस्त जगत् का कारण होने के कारण कारणत्व धर्म से विशिष्ट है—सगुण है। ब्रह्मा जी सर्वेश्वर के कार्य होते हुए समस्त जगत् के कारण होने के कारण कार्यत्व एवं कारणत्व इन दोनों भी धर्मों से विशिष्ट हैं—सगुण है। इसी प्रकार जगत् के समस्त पदार्थ किसी के कार्य होते हुए किसी अन्य के कारण बनते हैं—अर्थात् सभी कार्यत्व एवं कारणत्व धर्म से विशिष्ट होते हैं। इतना ही नहीं इन सभी में अन्य भी असंख्य धर्म रहते हैं। अतः वे सभी के सभी सगुण हैं। सर्वकारण परमेश्वर से लेकर सभी कार्यकारणात्मक जगत् ब्रह्म से अभिन्न होने के कारण सगुण ब्रह्म कहे जाते हैं। अतः यदि कोई शास्त्र के मर्म को समझने में असमर्थ अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु पुरुष इस कार्य-कारणात्मक सगुण ब्रह्म को ही तात्पर्य से उपासना करते हैं अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की उपासना को छोड़कर केवल सगुण उपासना में ही लगे रहते हैं ते=वे शास्त्र के मर्म को समझने में असमर्थ सगुण ब्रह्म के उपासक हि=निश्चय ही अन्धं तमः=अदर्शनात्मक अर्थात् विमोहक अविद्या में यन्ति=जाते हैं—प्रवेश करते हैं। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष मोक्ष के लिए विहित निर्गुण ब्रह्म की उपासना अर्थात् ब्रह्मविद्या के लिए प्रयत्न न करते हुए केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिए विहित सगुण ब्रह्म की उपासना में ही निरत रहते हैं, वे-निर्गुणब्रह्म की उपासना अर्थात् ब्रह्मविद्या के बिना मोक्ष का प्राप्त होना सम्भव न होने के कारण इस आविद्यक संसार में ही पड़े रहते हैं। (तथा)=इसी प्रकार ये=जो पुरुष अपनी योग्यता की उत्प्रेक्षा कर लेते हैं, अर्थात् जो स्वयं राग द्वेष आदि दोषों से युक्त होने के कारण वास्तव में शास्त्रों में अन्तःकरण की शुद्धि के लिए विहित कर्मों के अधिकारी

होते हुए भी अपने को सर्वकर्मसन्यासपूर्वक निर्गुणोपासना अर्थात् ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान के लिए अधिकारी समझ लेते हैं, अत एव असम्भूत्यां हि=केवल असम्भूति में अर्थात् कार्यकारणात्मक सगुण ब्रह्म से भिन्न निर्गुण ब्रह्म की उपासना में ही रताः=रमण करते हैं अर्थात् अशुद्धान्तःकरण अनधिकारी होने के कारण निर्गुण ब्रह्म को यथावत् ग्रहण कर नहीं पाते हैं अर्थात् साक्षात्कार कर नहीं पाते हैं; किन्तु केवल निर्गुण ब्रह्म का विचार प्रवचन आदि में ही अपने चित्त के लौल्य को शान्त कर लेते हैं, अथवा किसी सगुण ब्रह्म विशेष को ही निर्गुण मानकर अपने को कृतार्थ समझकर बैठ जाते हैं (ते)=ऐसे वे पुरुष ततः (अपि) भूयः=उस—केवल सगुण ब्रह्म की उपासना में तत्पर सगुणोपासक पुरुषों के द्वारा प्राप्य विमोहक संसार से अधिक अर्थात् घोर (अन्धं) तमः=अ-दर्शनात्मक अविद्या अर्थात् विमोहक संसार को यन्ति=जाते हैं—प्रवेश करते हैं। चित्त की शुद्धि के लिए शास्त्रों में विहित सगुणो-पासना को त्याग करने के कारण उनके चित्त की शुद्धि नहीं हो पाती है तथा चित्त के अशुद्ध रहने के कारण वे निर्गुण ब्रह्म को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार वे चित्तशुद्धि एवं निर्गुणब्रह्म के साक्षात्कार पूर्वक मोक्ष—इन दोनों से वञ्चित हो जाते हैं। सगुणोपासक को कम से कम चित्तशुद्धि एवं ब्रह्मलोक-पर्यन्त सद्गति प्राप्त हो जाती है; किन्तु इन अशुद्धान्तःकरण दुरभिमानी निर्गुणोपासकों के लिए वह भी प्राप्त नहीं हो पाती है। इसीलिए कहा कि—जो पुरुष स्वयं अशुद्धान्तःकरण होने के कारण निर्गुणोपासना के लिए अनधिकारी होते हुए भी चित्तशुद्धि के लिए विहित सगुणोपासना को त्यागकर केवल निर्गुणोपासना में ही रमते हैं अर्थात् ऊपर ऊपर से ही रमण करते हैं वे सगुणो-पासकों के द्वारा प्राप्य अविद्यक अविद्या अर्थात् विमोहक संसार से भी अधिक घोर विमोहक संसार को प्रवेश करते हैं। तात्पर्य

यह है कि अशुद्धान्तःकरण साधक के लिए निर्गुणोपासना के बिना केवल सगुणोपासना एवं सगुणोपासना के बिना निर्गुणोपासना—परमार्थतः ये दोनों व्यर्थ ही हैं, ये दोनों भी उसको संसारबन्धन से मुक्त कराने में असमर्थ ही हैं ॥ १२ ॥

(१३)

(सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों की सफलता का निरूपण)

आविद्यक संसार के हेतु होने के कारण सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों की भी अपेक्षणीयता प्राप्त हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों का समुच्चय कराने की इच्छा से दूसरा यह मन्त्र सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों को भी सफल बता रहा है कि—

पृथक्फलं हि सम्भूतेरसम्भूतेः पृथक्फलम् ।
निश्चित्यैवं हि विद्वांसो नस्तत्त्वं विचचक्षिरे ॥१३॥

सम्भूतेः=कार्यकारणात्मक सगुण ब्रह्म की उपासना का फलं=फल हि=निश्चय ही पृथक् (एव)=निर्गुण ब्रह्मोपासना के फल से भिन्न ही है। सगुण ब्रह्म की उपासना को सकाम होकर करने का फल अपनी कामनाओं की पूर्ति एवं निषिद्ध कर्मों में सम्भावित प्रवृत्ति से निवृत्ति। यदि सगुणोपासना को सकामता का त्याग एवं परमेश्वर में श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक करें तो उसका फल चित्तशुद्धि पूर्वक परमेश्वर के सारूप्य-साष्टर्यादि तक की सिद्धियाँ ही हैं। (तथा)=इसी प्रकार असम्भूतेः=सम्भूति अर्थात् कार्यकारणात्मक सगुणब्रह्म से भिन्न असम्भूति अर्थात् निर्गुणब्रह्म की उपासना का फलं=फल पृथक् (एव)=सगुणब्रह्मोपासकों के

द्वारा प्राप्य फल से भिन्न ही है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना यदि अशुद्धान्तःकरण में किया जाय तो वह निर्गुण ब्रह्म के परोक्ष अर्थात् शाब्द ज्ञान का ही हेतु रह जायगा। किन्तु यही निर्गुण ब्रह्म की उपासना शुद्धान्तःकरण में विधिवत् किया जाय तो वह निर्गुण परब्रह्म का साक्षात्कार कराकर साधक के सभी सांसारिक बन्धनों का विच्छेदपूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप परमपुरुषार्थ मोक्ष का हेतु बन जाता है। यह फल सगुणोपासना के फल से पृथक् है ही। एवं=इस प्रकार तत्त्वं=सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना का फलभेद को निश्चित्य=निश्चय करके अर्थात् निश्चित रूप में विद्वांसः=विद्वान् आचार्यों ने नः=हमें विचचक्षिरे=व्याख्यान किया है। यह हमें सर्वज्ञकल्प आचार्यों से प्राप्त आगम है; न कि हमारी ही कल्पनामात्र है; अत; विश्वसनीय एवं ग्राह्य है ॥ १३ ॥

(१४)

(सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना के समुच्चय का विधान)

शुद्धान्तःकरण साधक ही निर्गुण ब्रह्म को ग्रहण कर सकता है, न कि अशुद्धान्तःकरण पुरुष। अतः शुद्धान्तःकरण में ही निर्गुणोपासना सम्भव है एवं उसमें ही वह निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कराकर मोक्षरूप फल प्रदान कर सकता है। अननुष्ठित निर्गुणोपासना किसी के चित्त की शुद्धि का हेतु भी नहीं बन सकता है। चित्तशुद्धि तो निष्कामभाव से श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुष्ठित सगुणोपासना से ही सम्भव है। अतः निर्गुणोपासना अपनी उत्पत्ति के लिए चित्तशुद्धि का प्रधान साधन सगुणोपासना की अपेक्षा रखती है। इसी प्रकार सगुणोपासना भी

परमपुरुषार्थभूत मोक्ष रूप फल देने के लिए स्वयं असमर्थ होने के कारण परमपुरुषार्थभूत मोक्ष रूप फल देने के लिए निर्गुणोपासना की अपेक्षा रखती है। अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु को भी अपने चित्त की शुद्धि एवं मोक्ष—ये दोनों भी अभीष्ट हैं। इस प्रकार परस्पराविरुद्ध एवं एक पुरुषार्थसम्बन्धी होने के कारण परमपुरुषार्थ की सिद्धि के लिए सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों का समुच्चय उचित ही है। इसलिए अब अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु के लिए सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों का समुच्चय करने का उपदेश दिया जा रहा है कि—

यस्तु सम्भूत्यसम्भूती सहैवेहानुतिष्ठति।
मृत्युं तीर्त्वा स सम्भूत्याऽसम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥१४॥

यः तु=जो अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु पुरुष शास्त्र के मर्म को न जानने के कारण केवल सगुणोपासना या केवल निर्गुणोपासना का ही अनुष्ठान करते हैं, उन से भिन्न शास्त्र के मर्म को जाननेवाला जो पुरुष इह=यहाँ-इस कर्मभूमि में सम्भूत्यसम्भूती=सम्भूति अर्थात् कार्यकारणात्मक सगुण ब्रह्म एवं असम्भूति अर्थात् निर्गुणब्रह्म—इन दोनों की सह एव=एक साथ ही अनुतिष्ठति=उपासना करता है। तात्पर्य यह है कि अपने चित्त की शुद्धि के लिए निष्कामभाव से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक सगुणोपासना करने के साथ ही जो पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के लिए वेदान्तप्रतिपाद्य निर्गुण परब्रह्म की उपासना भी करता है, सः=वह सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना—इन दोनों को एक साथ अनुष्ठान करनेवाला पुरुष-साधक सम्भूत्या=कार्यकारणात्मक सगुण ब्रह्म की उपासना से मृत्युं=मृत्यु को-अर्थात् अन्तःकरण के राग द्वेष आदि मल-दोषों को तीर्त्वा=तर कर अर्थात् नाश कर के शुद्धान्तः-

करण होकर असम्भूत्या=निर्गुण ब्रह्म की उपासना से अमृतत्त्वं=मृत की अर्थात् सांसारिक दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति से उपलक्षित परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष को अश्नुते=प्राप्त करता है। अतः अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु को अवश्य ही सगुणब्रह्म की उपासना एवं निर्गुणब्रह्म की उपासना–इन दोनों को भी एक साथ अनुष्ठान करना चाहिए ॥१४॥

(१५)

(उपास्य सगुणब्रह्म से साक्षात्कार के प्रतिबन्धक आवरण हटाने के लिए प्रार्थना)

पहले यह बताया जा चुका है कि कर्म के द्वारा सगुण ब्रह्म की आराधना या उपासना की जाती है एवं ब्रह्म विद्या के द्वारा निर्गुण ब्रह्म का अनुसन्धान किया जाता है और अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु को इन दोनों की भी आवश्यकता है। ब्रह्म विद्या के अभ्यास से निर्गुण ब्रह्म को साक्षात्कार करके मुमुक्षु साधक मुक्त हो जाता है—यह समस्त वेदान्तों का सिद्धान्त है। किन्तु जो स्वभाव से ही बन्धन का हेतु है वह कर्म परम्परया भी हो मोक्ष का हेतु कैसे बन सकता है ? एवं जो स्वभाव से ही अविद्यामूलक है वह सगुणोपासना अन्तःकरण को कैसे शुद्ध कर सकता है ?—अन्तःकरण को कैसे ब्रह्मविद्या एवं निर्गुणोपासना के लिए योग्य बना सकता है ? इसमें सन्देह नहीं है कि सगुणोपासना से चित्त एकाग्र हो जाता है किन्तु सगुणोपासना से चित्त के राग द्वेष आदि नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई प्रमाण नहीं है; प्रत्युत आसुरी प्रवृत्तिवालों के लिए सगुणब्रह्म के साक्षात्कार से राग द्वेष आदि अन्तःकरण के दोषों के प्रवृद्ध होने का दृष्टान्त ही

बहुलतया पुराणेतिहासों में उपलब्ध होता है। अतः कर्म एवं सगुणोपासना अन्तःकरण की शुद्धि एवं ब्रह्मविद्या के समस्त प्रतिबन्धकों के निवारण के हेतु नहीं बन सकते ; अत एव पूर्व मन्त्रों में जो कहा गया कि "मृत्युं सोऽविद्यया तीर्त्वा"=कर्म से ब्रह्मविद्या के प्रतिबन्धक अन्तःकरण के रागद्वेषादि दोष रूप मृत्यु को नाश करके एवं "मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या"='सगुणोपासना से निर्गुणोपासना के प्रतिबन्धक अन्तःकरण के रागद्वेषादि दोष रूप मृत्यु को नाश करके'—यह उचित नहीं है। ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं कि—स्वभाव से कर्म राग द्वेष आदि दोषों से प्रेरित एवं बन्धन का हेतु होने पर भी एवं सगुणोपासना के आविद्यक होने पर भी, वे निष्काम भाव से ईश्वरप्रीत्यर्थ किये जाने पर प्रतिबन्धक अन्तःकरण के राग द्वेष आदि समस्त दोषों के नाशपूर्वक मोक्ष के हेतु बन जाते हैं। अतः कर्म एवं सगुण ब्रह्म की उपासना करते समय हमारा लक्ष्य राग द्वेष आदि अन्तःकरण के दोषों की निवृत्ति ही होनी चाहिए। किञ्च ईश्वरानुग्रह के बिना हमारे प्रयास मात्र से ही अन्तःकरण की शुद्धि एवं सभी अदृष्ट प्रतिबन्धकों की निवृत्ति हो जाना सम्भव नहीं है। अतः अशुद्धान्तःकरण मुमुक्षु को चाहिए कि वह अपनी शक्ति भर निष्काम भाव से ईश्वरप्रीत्यर्थ कर्म एवं सगुणोपासना को करने के साथ ही निष्कपट भाव से अपने उपास्त्र सगुण ब्रह्म से समस्त प्रतिबन्धकों के निवृत्ति एवं अन्तःकरण के सभी दोषों के विनाश के लिए प्रार्थना करें। तब उपास्य सगुण ब्रह्म के अनुग्रह से बिना अधिक प्रयास किये ही निर्विघ्न सभी प्रतिबन्धक नष्ट हो जाते हैं एवं उनका अन्तःकरण राग द्वेष आदि से रहित एवं शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार उपास्य सगुण ब्रह्म के अनुग्रह से बन्धकारक कर्म भी मोक्ष का हेतु बन जाता है एवं आविद्यक सगुणोपासना भी अविद्या के नाश का हेतु बन जाती

है ।। यही समस्त प्रतिबन्धकों की निवृत्तिपूर्वक अपने भाव की शुद्धि के लिए हमें किस प्रकार अपने उपास्य सगुण ब्रह्म से प्रार्थना करनी चाहिए—सो प्रार्थना का प्रकार अब आगे के चार मन्त्रों में बताया जा रहा है । उनमें भी प्रथम मन्त्र में सभी की सुविधा के लिए सभी के द्वारा उपासित सूर्यमण्डलान्तर्गत सगुणब्रह्म से ब्रह्मविद्या एवं निर्गुणब्रह्म के साक्षात्कार के समस्त प्रतिबन्धकों को हटाने के लिए प्रार्थना करने का प्रकार बताया जा रहा है कि—

सौवर्णेनेव पात्रेण सतस्तेऽपिहितं मुखम् ।
तदपावृणु भो पूषन् ! सत्यधर्मस्य दृष्टये ।।१५।।

सौवर्णेन इव=सौवर्ण अर्थात् सोने के समान ज्योतिर्मय पात्रेण=ढकने के साधनीभूत पात्र से अर्थात् ढक्कन से ते सतः= आप सूर्यमण्डलान्तर्गत सद्रूप ब्रह्म का अथवा परमार्थ सत्यस्वरूप आप ब्रह्म का मुखं=मुख अर्थात् स्वरूप अपिहितं=ढका हुआ है अर्थात् आवृत है । भो पूषन् !=हे सूर्यरूप में सब का पोषण करने-वाले सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मन् ! सत्यधर्मस्य (मम) दृष्टये=सद्धर्म को अर्थात् शास्त्रविहित धर्म के अनुष्ठान करनेवाले मुझ साधक को आपका दर्शन हो—इसलिए अथवा सत्यधर्मस्य (तव, दृष्टये= सत्यस्वरूप आप का दर्शन मुझे हो—इसलिए (त्वं)=आप तत्= वह आवरक सोने के से पात्र को अपावृणु=हटा दीजिए ।।

सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष के सुवर्ण अर्थात् सोने के समान चमकीले—ज्योतिर्मय पात्र अर्थात् सूर्यमण्डल से ढके रहने के कारण हम उसे अपने प्राकृत चक्षुओं से देख नहीं सकते हैं । किन्तु यदि हम शास्त्रविहित कर्मों को यथावत् अनुष्ठान करेंगे एवं विधिवत् सगुणोपासना भी करेंगे तो उनसे हमारी चक्षु

सुसंस्कृत हो जायेंगी एवं वे सुसंस्कृत चक्षु उस सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष को देखने के लिए समर्थ हो जायेंगी। इस प्रकार निष्काम भाव से ईश्वरप्रीत्यर्थ किये गये कर्म एवं सगुणोपासना रूप सद्धर्म के आचरण से सुसंस्कृत चक्षुष्मान् अर्थात् विशुद्धान्तःकरण पुरुषों को ही ईश्वर अपने निरावरण स्वरूप को प्रकट करते हैं। ऐसे सद्धर्म के आचरण से विशुद्धान्तःकरण पुरुषों के द्वारा की गई प्रार्थना ही सफल होती है। अतएव साधक मुमुक्षु सत्यधर्म अर्थात् सद्धर्म के अनुष्ठाता मुझे सत्यस्वरूप आपका निरावरण साक्षात्कार हो—इसलिए आप अपने को आवृत करनेवाले अर्थात् ढकनेवाले आवरण को हटा दीजिए कहकर अपने उपास्य सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष से अपने को अपने निरावृत स्वरूप में ही प्रकट करने के लिए प्रार्थना करता है। किञ्च–सौवर्ण अर्थात् अत्यन्त सुन्दर से प्रतीत होनेवाले, अतएव प्रलोभक नामरूपात्मक विषयरूप जगत् से आवृत रहने के कारण हमें उनके अधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं हो पा रहा है। अतः साधक मुमुक्षु अपने उपास्य सगुण ब्रह्म जो स्वभावतः सच्चिदानन्द घन ही हैं, उससे प्रार्थना करता है कि आप अपने को ढकनेवाले, अतीव सुन्दर से प्रतीत होनेवाले इन प्रतिबन्धक विषयों को—अर्थात् नामरूपात्मक जगत् को हटा दीजिए ताकि मैं इन विषयों के अधिष्ठान शुद्ध सच्चिदानन्दघन आपके साक्षात्कार करके कृतार्थ हो जाऊँ॥

(१६)

(साक्षात्कार के प्रतिबन्धकों को हटाने के लिए विशेष प्रार्थना एवं उसका उद्देश्य)

पूर्वमन्त्र में उपास्य सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष से अपने

ज्योतिर्मय आवरण को हटाने के लिए प्रार्थना की गई। अब यह बताया जा रहा है कि उस ज्योतिर्मय आवरण को किस प्रकार हटाना चाहिए एवं आवरण हटाने का प्रयोजन क्या है ?—

सूर्याय चैकगतयेऽत्र यमाय पूष्णो
तुभ्यं प्रजापतिसुताय नमोऽस्तु भूयः।
व्यूहाभितान् स्वकिरणानुपसंहरौजः
पश्येयमद्य तव मङ्गलमात्मरूपम् ॥१६॥

सूर्याय=सूर्य—सभी किरणों को, समस्त जीवों के प्राणों को एवं पृथिवी के समस्त रसों को स्वीकार अर्थात् ग्रहण करने के कारण आप सूर्य हैं; अथवा अच्छी तरह अर्थात् जिस प्रकार चलने से जगत् का कल्याण हो उस प्रकार नियमित रूप से अपनी ही इच्छा से अपने नियमित मार्ग में चलने के कारण आप सूर्य हैं; अथवा सूरि अर्थात् विद्वानों के ज्ञेय होने के कारण भी आप सूर्य हैं; वैसे आप सूर्य को, च=तथा एकगतमे=अकेले ही चलनेवाले होने के कारण आप एक गति हैं; यद्वा समस्त जगत् की एकमात्र गति अर्थात् जीवनाधार या प्राप्तव्य स्थान होने के कारण आप एकगति हैं, वैसे आप एकगति को, अथ=एवं यमाय=सभी के संयमन एवं नियमन करनेवाले आप यम हैं, वैसे आप यम को, पूष्णे=सभी के पोषण करनेवाले आप 'पूषा' हैं, वैसे आप पूषा को, प्रजापतिसुताय=प्रजापति कश्यप के पुत्र के रूप में अपने को प्रकट करनेवाले आप प्रजापतिसुत हैं, वैसे प्रजापति के पुत्र तुभ्यं=आपको, भूयः=पुनः पुनः नमः अस्तु= नमस्कार रहे। इस प्रकार अपने उपास्य सूर्य की स्तुति एवं नमस्कार करके अपने अभीष्ट वर की प्रार्थना करते हैं कि—

अमितान्=असंख्य स्वकिरणान्=अपने किरणों को व्यूह=एकत्र कर लीजिए अथवा हटा लीजिए, एवं (तव)=आपके ओजः= अत्यन्त सन्तापक तेज को उपसंहर=उपसंहार अर्थात् शान्त कर लीजिए। सूर्यमण्डलान्तर्गत आपको देखने में ये ही प्रतिबन्धक हैं। अतः यहाँ तात्पर्य यह है कि आपके यथार्थ स्वरूप के साक्षात्कार में सम्भावित सभी प्रतिबन्धकों को आप दूर कर लीजिए ताकि (अहं)=मैं अद्य=आज तव=आपके (तद्)=वह मंगलं= कल्याणकारक अर्थात् मोक्षप्रद आत्मरूपं=आत्मस्वरूप को पश्येयं=देख लूँ—साक्षात्कार कर लूँ॥ यहाँ साधक मुमुक्षु यह जानता है कि सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष स्वरूपतः अपने से भिन्न नहीं है, अतएव वह कहता है कि मैं आपके वह आत्मस्वरूप—ब्रह्मादिस्थावरान्त समस्त प्राणियों में समान भाव से उनके अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान—अतएव आप में भी विद्यमान वह आत्मस्वरूप को साक्षात्कार कर लूँ। तात्पर्य यह है कि हम दोनों में भेद भाव न रहे—मैं आपको अपनी अन्तरात्मा के रूप में ही साक्षात्कार कर लूँ एवं इस संसार बन्धन से हमेशा के लिए मुक्त हो जाऊँ॥१६॥

(१७)

(मुमूर्षु का शरीर प्राण आदि में वैराग्य एवं परमात्मप्राप्ति में औत्कण्ठ्य का प्रदर्शन)

साधक मुमुक्षु निष्काम भाव से ईश्वरप्रीत्यर्थ शास्त्रविहित कर्म एवं सगुणोपासना को यथाशक्ति करते हुए अपने उपास्य परमेश्वर से परमात्मसाक्षात्कार में सम्भावित सभी प्रतिबन्धकों को हटाने के लिए प्रार्थना करता है। इस प्रकार साधना करते हुए ईश्वरानुग्रह से जब उसके अन्तःकरण के सभी

राग द्वेष आदि दोष नष्ट हो जाते हैं एवं शरीर प्राण आदि में तीव्र वैराग्य उत्पन्न होता है। उपास्य एवं उपासक के बीच का भेद क्रमशः क्षीण होता जाता है और इसका मन अपने उपास्य समष्टि परमेश्वर से मिलने के लिए चटपटाता है। इस प्रकार अपने उपास्य परमेश्वर से मिलने के लिए उत्कण्ठ साधक मुमुक्षु को अपने उपास्य परमेश्वर से प्रार्थना किस प्रकार करना चाहिए सो प्रार्थना का प्रकार अब बताया जा रहा है कि—

प्राणोऽनिलामृतं यातु भस्मतां यातु देहकः।
ह्रीं क्रतो स्मर मे कर्म क्रतो स्मर कृतं मया ॥१७॥

मुझे अब मेरे उपास्य परमेश्वर से अतिरिक्त प्राकृत मनुष्यों के लिए अत्यन्त प्रिय शरीर, प्राण आदि सभी विषयों में भी आस्था नहीं रह गई है। मेरा एकमात्र प्रयोजन बस उपास्य परमेश्वर से मिलने में ही सिद्ध होने वाला है; यहाँ जीने से मुझे कोई भी प्रयोजन नहीं है। अतः इस संसार से सम्पूर्णतया विरक्त एवं जीने की इच्छा तक को त्यागे हुए एवं मृत्यु को स्वागत करने वाले (मम) मेरे प्राणः=इस संसार में जीवन का हेतु प्राण (अद्य)=अब (शरीराद् उत्क्रम्य)=इस शरीर से निकलकर अमृतानिलं=अविनाशी अर्थात् समष्टि वायु को यातु=प्राप्त हो। तात्पर्य यह है कि मेरे यह प्राण इस व्यष्टि शरीर से निकलकर समष्टि प्राण के साथ मिल जाय। एवं (गतप्राणः)=प्राण से रहित अर्थात् मृत देहकः=शरीर भस्मतां यातुः=जलकर भस्म हो जाय। तात्पर्य यह है कि मेरे धार्मिक होने के कारण मेरे पुत्र मेरे मरने के बाद इस शरीर का विधिवत् दाह संस्कार करेंगे ही, अतः यह भस्म हो जायगा। यदि प्रारब्ध के कारण मृत शरीर को दाह संस्कार किया भी न जाय तब वह किसी मांसाहारी प्राणी का

आहार होकर विष्टा बन जायगा या मिट्टी में गाड़े जाने पर सड़कर मिट्टी ही बन जायगा। तात्पर्य तो यही है कि चाहे यह शरीर भस्म हो जाय या चाहे मिट्टी ही हो जाय या चाहे विष्टा ही हो जाय—मुझे इस शरीर से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा जीवन का एकमात्र लक्ष्य तो मेरे उपास्य परमेश्वर के साथ ऐकान्तिक मिलन ही है। वह मिलन तो शास्त्रविहित यज्ञ याग आदि सत्कर्म एवं उपासना से प्रसन्न हुए परमेश्वर के अनुग्रह से ही सम्भव है। मैंने भी मेरे इस जीवन में यथाशक्ति सत्कर्म एवं सगुणोपासना किया ही हूँ। अतः अब हे ह्रीं क्रतो !=हे ह्रीङ्कार-वाच्य समस्त यज्ञों के द्वारा आराध्य ब्रह्मन् ! आप मे=मेरे द्वारा किये गये कर्म=सत्कर्मों को स्मर=स्मरण कीजिए और मुझे अनन्यशरण समझकर मेरे ऊपर अनुग्रह कर मुझे सायुज्य मोक्ष प्रदान कीजिए। हे क्रतो !=हे यज्ञ स्वरूप परमेश्वर ! मया= मेरे द्वारा (यत्)=जो कृतं=किया गया (तत्)=उसे स्मर=स्मरण कीजिए एवं मुझे अनन्यशरण समझकर मेरे सायुज्य मोक्ष के सभी प्रतिबन्धकों को नाश कर दीजिए। तात्पर्य यह है कि हमें शरीर प्राण आदि का कोई बल नहीं है, ये सभी के सब हमें छोड़ देंगे। हमें बल तो केवल उपास्य परमेश्वर का ही है। वे हमारे ऊपर कृपा का वर्षण करके सायुज्य मोक्ष प्रदान कर अनुगृहीत करें। ये मन्त्र का जप विशेषतः मरणासन्न पुरुष को एकाग्र होकर करना चाहिए॥ १७॥

(१८)

(पापनाश एवं उत्तरायणमार्ग की प्राप्ति के लिए प्रार्थना)

इस प्रकार पूर्व तीन मन्त्रों में अपने उपास्य सगुण ब्रह्म से प्रार्थना करने के बाद अब साधक कर्म के साधनीभूत अग्नि

से अपने सभी पापों को नाश करने के लिए एवं मरने के बाद अपने को उत्तरायण मार्ग में ही ले जाने के लिए प्रार्थना करता है कि—

अग्ने ! त्वमस्मत्कृतकर्मविद्वान्
तुभ्यं नमस्कुर्म इहाद्य भूयः ।
पापानि दग्ध्वा प्रतिबन्धकानि
वह्ने ! नयास्मान् सुपथैव राये ॥१८॥

हे अग्ने ! = हे अग्नि ! त्वं = आप अस्मत्कृतकर्मविद्वान् (असि)=हमारे द्वारा किये गये सभी कर्मों को जानते हैं। (वयं)= हम इह=यहाँ इस अस्थिर कर्म भूमि में अद्य=अब मृत्युग्रस्त अवस्था में तुभ्यं=आपको भूयः=बार बार नमः कुर्म=नमस्कार करते हैं। हे वह्ने !=हे वह्ने ! (त्वं)=आप (अस्माकं)=हमारे प्रतिबन्धकानि = श्रेयोमार्ग के प्रतिबन्धक पापानि = पापों को दग्ध्वा=जलाकर—अर्थात् नष्ट कर अस्मान्=हमें राये=अपने सत्कर्मों के भोग के लिए सुपथा एव=शोभन उत्तरायण मार्ग से ही नय=ले जाओ। तात्पर्य यह है कि हे अग्ने ! आप प्राणिमात्र के अन्दर बाहर व्याप्त वैश्वानर हो। आप हमारे भले-बुरे सभी कर्मों को जानते ही हैं। और आप यह भी जानते हैं कि हम आपके शरणागत हैं—आपके द्वारा ही हमारे सभी सत्कर्मों की साधना हुई है। हमारे सत्कर्मों के साधन आप ही हैं। अतः आज हम आपको बार बार नमस्कार करते हैं—आपके शरण में आये हैं। आप जो श्रेयोमार्ग के प्रतिबन्धक हैं उन हमारी सभी पापों को नाश करके अपने द्वारा किये गये सत्कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग सुख को भोगने के लिए—अथवा यदि साधक

विरक्त हो तो महर्लोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त लोकों में सुख भोगने के लिए उत्तरायण मार्ग से ही ले जाइए। हम पुनरागमन रूप दोष से दूषित दक्षिणायन मार्ग से थक गये हैं—अतः आपके शरण में आये हैं; आप अपने अकारण करुणा का वर्षण कर हमें पुनरागमन से रहित उत्तरायणमार्ग में ही ले जाइए—हमें इस संसार दुःखों से उद्धृत कीजिए ॥१८॥

(फलसंकीर्तन एवं उपसंहार)

अब अध्येता की इस ग्रंथ के अध्ययन एवं अनुसन्धान में प्रवृत्ति की सिद्धि के लिए ग्रन्थाध्ययन एवं अनुसंधान के फल का निरूपण कर रहे हैं कि—

य एतदनुशासनमधीतेऽनुसन्धत्ते च सोऽविद्यां तरति, स मृत्युं तरति, स मृत्युं तरतीत्यनुशासनम् ॥

—इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छङ्कर-
भगवत्पूज्यपादाब्जमधुपस्येश्वराश्रमस्य कृतौ
वेदान्तानुशासने ईशावास्यानुशासनम् ॥

यः=जो पुरुष एतद् अनुशासनं = ईशावास्यानुशासन का अधीते = विधिवत् गुरुमुख से अध्ययन करता है अनुसंधत्ते च = और अनुसंधान करता है, गुरुमुख से श्रवण करने के बाद बार बार इसका पाठ करता है, मनन करता है एवं इसमें प्रतिपाद्य आत्मतत्त्व का एकान्त में ध्यान करता है, सः=वह पुरुष अविद्यां= समस्त सांसारिक क्लेशों का मूल कारण अविद्या को तरति=तर जाता है अर्थात् नाश कर देता है; और सः=अविद्या के नाश हो

जाने पर वह अविद्या के कार्यभूत मृत्युं=मृत्यु अर्थात् जन्म मरण रूप संसार बन्धन को भी तरति=तर जाता है—नाश कर देता है। सः=वह मृत्युं=संसार रूप मृत्यु को तरति=तर जाता है —नाश कर देता है। इति अनुशासनम्=इति ईशावस्योपतिपद् का अनुशासन है। 'स मृत्युं तरति, स मृत्युं तरति'—कहकर दो बार आवृत्ति को आदरार्थ या अनुशासन की समाप्ति की सूचना के लिए समझ लेनी चाहिए॥ इति शम्॥

(शान्तिपाठः)

ह्रीं हरिः॥

ब्रह्म पूर्णं जगत् पूर्णं पूर्णे पूर्णं प्रतीयते।

पूर्णस्यादाय पूर्णत्वं पूर्णमेकं हि शिष्यते॥

ह्रीं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

हरिः=संसार के मूलकारण अविद्यारूप पाप को नाश करनेवाले ह्रीं=हे ह्रीङ्काररूप परब्रह्मन्! (तुभ्यं वयं नुमः)= आप को हम नमस्कार करते हैं॥

ब्रह्म पूर्णं (वर्तते)=ब्रह्मपूर्ण है। (एतद्) जगत् (अपि)=यह जगत् भी (स्वरूपतः) पूर्णः (एव वर्तते)=स्वरूपतः पूर्ण ही है। (यतः)=क्योंकि (अज्ञानाद् हेतोः)=परमात्मतत्त्व के अज्ञान के कारण पूर्णे (ब्रह्मणि)=पूर्ण ब्रह्म में पूर्णं (जगत्)=स्वरूपतः पूर्ण रहनेवाला जगत् प्रतीयते=प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई देता है। (अतः)=इसलिए पूर्णस्य (जगतः)=पूर्ण जगत् का पूर्णत्वं आदाय= पूर्णत्व को ग्रहण कर लेने पर—जान लेने पर एकं पूर्णं हि=एक

अखण्ड पूर्ण परब्रह्म ही शिष्यते=बच जाता है—अनुभव में आता है ॥

ह्रीं=हे ह्रीङ्कारस्वरूप परब्रह्मन् ! (नः आध्यात्मिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आध्यात्मिक ताप अर्थात् दुःखों का नाश हो जाय। (नः आधिभौतिकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आधिभौतिक तापों का नाश हो जाय। एवं (नः आधिदैविकानां तापानां) शान्तिः (अस्तु)=हमारे आधिदैविक तापों का नाश हो जाय। तात्पर्य यह है कि हमारे त्रिविध तापों का नाश हो जाय।

श्रीमच्छङ्करभाष्याब्धौ निमज्योन्मज्य सर्वशः।
सर्वजनहितायाद्य कृता लध्वीयमैश्वरी ॥

—इति यह श्रीमत् परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्करभगवत्पूज्यपादाब्जमधुप स्वामी ईश्वराश्रम यति की कृति
वेदान्तानुशासनं में ईशावास्यानुशासनं की
'ऐश्वरी' व्याख्या है ॥

—*—

॥ ह्रीं तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

"आत्मा की उपेक्षा करने पर पुरुष अर्थात् जीव को असुर अर्थात् विषयासक्त पुरुषों के द्वारा भोग्य चौरासी लाख योनियों में नानाविध क्लेशों को भोगते हुए भटकना पड़ता है। अतः विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा की उपेक्षा न करते हुए आत्मसाक्षात्कार के लिए यथा अधिकार प्रयत्न करें। यदि पुरुष विषयासक्त हो तो ईश्वरार्पण बुद्धि से या कर्तव्यत्त्व बुद्धि से शास्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा अन्तःकरण के रागद्वेषादि रूप मल का नाश करने का प्रयत्न करें एवं विमलान्तःकरण पुरुष पुत्र वित्त एवं लोक विषयक एषणा अर्थात् कामनाओं को त्याग कर सर्वकर्मसन्यासपूर्वक समस्त चराचर विश्व को परब्रह्ममय देखते हुए परमात्म-साक्षात्कार के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें॥"

(इसी पुस्तक से)